अद्वैत सिद्धान्त

भूमिका

परिदृश्यमान विश्वप्रपच का मूलतत्व स्वरूपतः कैसा है यह, जानने की अभिलाषा विवेकी के लिये स्वाभाविक है। इस जिज्ञासा के कारण विचार की प्रवृत्ति होती है। और विचार के फलरूप भिन्न भिन्न सिद्धांत प्रगट होते है। भारतमें जो कुछ दार्शनिक सिद्धांत प्रगट हुए है उनके नाम बहुत्ववाद द्वैतवाद और अद्वैतवाद दे सकते है। इन वादों में भी कई मतभेद है।

अद्वैतवादमे विशिष्ट और केवल ये दो भेद है। इस प्रबंधमें केवलाद्वैतवादीयोंका तत्वविषयक सिद्धान्त संक्षेपमे प्रतिपादित कीया जायगा। उनका सिद्धांत यह है कि सर्वदृश्य-प्रकाशक स्वप्रकाश अनन्तस्वरूप ब्रह्म ही किंचित् उपाधिवश विवर्तित होकर चेतनाचेतन नानाविध पदार्थरूपसे प्रतीयमान होता है, तद्व्यतिरिक्त अपर कुछ वास्तव नही। इस सिद्धांतका श्रुति में तीन प्रकारसे वर्णन किया गया है ऐसा केवलाद्वैतवादिको अभिमत है। किसी स्थलमें साक्षात् अद्वैत प्रतिपादन द्वारा (एकमेवाद्वितीयम्), कहीपर द्वैतके निषेध द्वारा (नेहनानास्तिकिंचन), अन्यस्थानमे ब्रह्म ही जगत्का उपादान है ऐसा कहकर (यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते)। श्रुति वाक्यों के तात्पर्यके विषयमें नानाविध संदेह और मतभेद है और भिन्न २ समाज परस्पर विरुद्ध वाक्यों को प्रमाण रूपसे मानते

हैं, इसलिये यह प्रबंध श्रुतिव्याख्यामें प्रवृत्त न होकर युक्ति तर्क द्वारा प्रतिपादन किया जायगा। सत्यका निर्धारण विचारद्वारा करना यह मानवमात्र का स्वाभाविक और सार्वजनिक पथ है। किसी शास्त्रको सब लोक प्रमाणभूत न मानें परंतु जबतक विचारमें कोई भ्रान्ति नहीं पाई जाती तबतक उस विचार द्वारा प्रस्थापित किये हुये सिद्धांत को सबको मानना ही पड़ता है।

केवल तर्क अप्रतिष्ठ है अतःश्रुतिव्याख्यामेंही प्रवृत्त होना संगत है यह वचन विचारसह नहीं। जिस कारणसे तर्क की अप्रतिष्ठा उसी कारणसे उक्त व्याख्या की भी अप्रतिष्ठा समझनी चाहिये। एकने तर्कसे स्थिर कीहुई सिद्धान्तको दूसरी अधिक तर्ककुशल व्यक्ति जैसे विपर्यस्त कर सकता है उसी प्रकार एक व्याख्या कर्त्ता की अपेक्षा दूसरी अधिक बुद्धिमान व्यक्ति उस व्याख्याका खण्डन और उससे विपरीत व्याख्याभी कर सकता है। शास्त्रोंके तात्पर्यका *निर्णय इस प्रकारकी व्याख्याओं द्वारा ही करना होगा* इसलिये शास्त्रव्याख्या और श्रुतिव्याख्याभी अप्रतिष्ठ ही है। औरभी 'तर्काप्रतिष्ठानात्' यह उद्घोष शोभनीय नहीं, कारण, यदि तर्क मात्र ही अप्रतिष्ठ हो और अनुमान मात्रकाही प्रामाण्य संदिग्ध हो तो सब तर्क अप्रतिष्ठ यह सिद्धांत किस प्रमाणसे सिद्ध होगी! कतिपय तर्कोंकी अप्रतिष्ठा देखकर उनके दृष्टान्तोंसे तर्क अर्थात् अनुमान द्वाराही सब तर्कोंकी अप्रतिष्ठा सिद्ध करनी होगी। किन्तु सब तर्क यदि अप्रतिष्ठ या सन्दिग्ध-प्रामाण्य हो तो सब तर्कोंकी अप्रतिष्ठाभी तर्कद्वारा सिद्ध नहीं हो सकती। अतः तर्कमात्र ही अप्रतिष्ठ है ऐसा वचन असंगत है। हेतुवादका त्याग करनेसे

स्वपक्षका समर्थन और प्रकाशन संभव नही। बुद्धिकी तीक्ष्णता के तारतम्य के अनुसार युक्ति का तारतम्य होना भी स्वाभाविक है। एकसमयमे जो युक्ति अखंडनीय प्रतीत होती है वह बुद्धि के अधिक उन्नत विकासके साथ खंडित हो सकेगी। तथापि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि तत्वनिरूपण में युक्ति ही एक मात्र मार्ग है क्योंकि इसके अस्वीकार करने के लिये भी युक्ति का ही आश्रय लेना पडता है। औरभी, संशय होनेपर यथामति युक्ति-तर्क-से बोध का लाभ होता है, वह अपनी संपत्ति होती है। अतः इस प्रबंधका आरम्भ युक्तितर्क के बलपर होता है यह योग्य ही है। इस प्रबंध में जो वाक्य उध्दृत किये जावेंगे वे केवल युक्ति के समर्थकरुपसे या युक्ति के उत्थापक रुपसे किये जावेंगे, वे अभ्रात अखंडनीय प्रमाण रूपसे उपयोगमें नही लावे जावेंगे। स्वतंत्र-विचार-विहीन श्रद्धाजड होकर प्राच्य या पाश्चात्य कोई भी सिद्धांत अभ्रान्त रूपसे मान्य नहीं करना चाहिये (१) यदि केवल श्रद्धासे किसी सिद्धान्त को आलिंगन करना अभिप्रेत न हो

[१] न ह्यातनादात्तमसो निपतन्ति महासुराः।
युक्तिमद्वचन ग्राह्य मयान्यैश्च मनीषिभिः।

(साख्य प्रवचन सूत्रवृत्तिमे उध्दृत)

It is a disease of philosophy when it is neither bold nor humble, but merely a reflection of the temperamental presuppositions of exceptional personalities. .... The final court of appeal is intrinsic reasonableness.

(Whitehead's "Process and Reality")

परंतु दार्शनिक पद्धति का अवलंबन कर तत्व का निर्णय करना अभिष्ट हो तो मानवीय अकृत्रिम अनुभव को यथावत् मानकर उसके विश्लेषण पूर्वक केवल चिंतन की सहायता से यथामति निर्दोष विचार प्रगट करने होंगे। विचारपद्धति पृथक २ है। इस ग्रंथमें भारतवर्षीय मध्ययुग के दार्शनिक मनीषियों की विचारप्रणाली का अनुसरण किया जायगा। इस कारण आधुनिक पाश्चात्य जडविज्ञान के और गणितसिद्धांतमिश्रित अध्यात्म विज्ञान के अनुरूप विचार इस प्रबंधमें नहीं पाये जायेंगे तथा पाश्चात्य मनोविज्ञान या शारीरविज्ञान या भूतविज्ञान के साथ तुलना कर दिखलाने का प्रयासभी इस प्रबंधमें नहीं किया जायगा।

दर्शन शास्त्र का और उन सब शास्त्रोंका विचार और विषयके भेद प्रसिद्ध है (२)

---

(2) 1 Metaphysical problems—the nature of knowledge, chief stress on consciousness, rationality, ontology, idealism, metaphysicality. 2 Physico-psychological problems—the nature of the brain, the reactions of the nervous system, the psycho-physiology of mental states, the mechanisitc and reflex nature of the organism, chief stress on activity, sense-organs, physiology and neurology, materialism, physicality
3 Psychological problems—the dynamic nature of mind, the complexity of behaviour patterns, mental mechanisms, an analysis of emotions

विषय एकजातीय होने पर भी भिन्न २ शास्त्रोंमें भिन्न २ दृष्टि के अनुसार विभिन्न प्रकार के विचार दिख पडते हैं (३) इस प्रबंधमें प्राचीन सिद्धात प्राचीन पद्धतिसे ही प्रतिपादित किया जायगा ।

अद्वैत सिद्धात के प्रतिपादन में यह प्रदर्शित करना आवश्यक है कि विविध पदार्थों की सत्ता स्वतंत्र नहीं किन्तु परतंत्र अर्थात अन्य सत्ता के अधीन है । पदार्थ समूह सत्ता और भान के लिये जिसके अधीन है वह तत्व किसी का सापेक्ष नहीं किन्तु स्वतः सिद्ध स्वप्रकाश है इसका विवेचन होनेसे उस तत्व का अद्वैतत्व प्रतिपन्न होगा, क्योकि जो जिस सत्ता के अधीन है वह उस सत्ता का भेदक नहीं हो सकता । यह एक रीति है। अथवा दुसरी रीति यह है कि प्रथमतः स्वत सिद्धत्व स्वप्रकाशत्व का प्रतिपादन करने के पश्चात् वह नित्य अनन्त स्वरूप है सर्व

drives, purposes, desires, chief stress on abilities, individual differences personality types, environmental factors, psycho-sociology, humanism.

(3) दृष्टान्तस्वरुप, जिस Voluntary movement को, Physicist " a link in a series of displacements of mass-particles कहते है, उस को Physiologist, ' a combination of muscular contractions initiated from a centre in the cortex of the brain " कहते है, वहि पुनः Psychologist के निकट " a step to the satisfaction of a felt want " रुपसे विवेचित होता है ।

पदार्थ उसके अधीन हैं यह सिद्ध होनेसे उस तत्व का अव्दैतत्व प्रतिष्ठित होगा। इसके पश्चात् यदि यह प्रतिपादित हो कि उस अव्दैत सत्तामें विभक्त प्रतिभास वास्तवमें नहीं है तो केवलाव्दैतसिद्धान्त प्राप्त होगा। तात्पर्य यह है कि, उसी की सत्ता से सर्व सत्तावान है, उसी के प्रकाश से विश्व प्रकाशित है, केवल इतनाही निरूपित होनेसे वह अव्दैत सविशेष या वास्तव-धर्म-सहित होगा अर्थात् विशिष्टाव्दैत होगा। अतः विशेषणरहित एकरस तत्व का प्रतिपादन करना हो तो यह प्रदर्शन आवश्यक है कि अशेष पदार्थ एक ही सत्तासे सत्तावान, एक ही भानसे भासित है, परंतु उस तत्वमें किसीभी पदार्थ का वास्तवमें अस्तित्व नहीं है। अर्थात् केवलाव्दैत निरूपण के लिये तत्व ऐसा होना चाहिए कि जो स्वतः सिद्ध है जिसमें सर्व पदार्थ है परंतु वह पदार्थ तात्विक या पारमार्थिक नहीं है.

पदार्थ दो प्रकारके है। ज्ञान और ज्ञेय। ज्ञानही ज्ञेयके संबंधसे ज्ञातारूप होता है। इनमे यदि ज्ञानको मूलरूपसे विवेचन किया जावे और वह एक एसा प्रतिपन्न हो और ज्ञेय उसका परिणामरूप अभिव्यक्ति हो, तो चेतनाव्दैत सिद्ध होगा। यदि जड (ज्ञेय) को मूलरूप माना जावे और चेतन (ज्ञान) उसकी परिणामरूप अभिव्यक्ति है ऐसा प्रतिपादित हो, तो जडाव्दैत सिद्ध होगा। परंतु केवलाव्दैतवादियों को यह दोनो मत मान्य नही है। केवलाव्दैत-मतमें जड, चेतनका परिणाम नहीं और चेतन, जडका परिणाम नही। यह भी मान्य नहीं कि, जड, चेतन से स्वतंत्र पदार्थ है।

चेतन और जड ये विरुद्ध स्वभावके होनेसे भी जडपदार्थ सत्ता और भान के लिये चेतन की अपेक्षा रखता है। चेतन द्वारा विषयरूपसे प्रतिभात दृश्यपदार्थ (जड) की सत्ता–स्फूर्ति चेतन विना सिद्ध नहीं हो सकती। स्वयं सत्ता और स्फूर्ति का अभाव होनेके कारण जडकी पृथक् सिद्धि नहीं हो सकती। स्वत सिद्ध होनेके कारण चेतन किसीका गुणभूत नहीं है अतः वह जडका परिणामरूप नहीं। साक्षीरूप होनेके कारण चेतन का विकार नहीं है। अतः अव्दैतवादियों को यह भी सम्मत नहीं कि वह जडरूपसे परिणत हुआ है। सुतराम् केवलाव्दैत प्रतिपादन की रीति यह है कि— जड पदार्थ चेतन–सत्ता–भानसे सत्तावान और भासित है यह प्रदर्शित करना पश्चात् जडका मिथ्यात्व प्रतिपादन करना। अर्थात् एक अखंड चेतनमें जड प्रपंच के मिथ्यात्व निश्चय पुरस्सर ही सद्रुप चेतन का आनन्त्य प्रतिपादित होता है। यद्यपि परिणामवादमे एक ही कारण सिद्ध होनेसे अव्दैतत्व प्रतिपन्न होता है तथापि एकरस ब्रह्मात्मैक्य केवल उपरोक्त रीतिसे ही प्रतिष्ठित होगा।

उल्लिखित दो रीतियोंमेसे प्रथम रीति अनुसार अव्दैतत्व प्रतिपादन के लिये जाग्रत अवस्थाका विवेचन करके यह निरूपन करना है कि उत्पत्तिविनाशशील ज्ञान से व्यतिरिक्त बाह्य पदार्थ है; उन पदार्थों का ज्ञान उत्पन्न होनेके पूर्व वे अज्ञात रहते हैं; अज्ञात और ज्ञात दोनो अवस्थाओंमे वे एकही प्रकाशसे प्रकाशित है। यथार्थ ज्ञान और यथार्थ ज्ञेय की समान अयथार्थ-

ज्ञान और अयथार्थ ज्ञेय भी उसी प्रकाशसे प्रकाशित है। वह प्रकाश सर्वत्र अनुस्यूत एक अखड सत्स्वरूप है। यह सिद्धान्त स्वप्न सुषुप्ति अवस्था के विचार द्वारा भी सिद्ध होना चाहिये। इसके पश्चात् सर्वविषभेदवर्जित चिद्वस्तुमें विवेकदृष्टिसे जिनकी स्वरूपतः विद्यमानता असंभव है उन जड पदार्थोंका अस्तित्व और प्रतिति कैसे संभव हो सकती है इसकी युक्ति चेतन की दृष्टिसे प्रदत्त होगी (४) द्वितीय रीतिके अनुसार इस प्रबंधमें यह प्रतिपादित करना है कि एक स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश तत्व है। अशेष पदार्थ उससे स्वतंत्र भिन्न नहीं किन्तु उसीकेही अधीन है, वे सब पदार्थ सत्य नहीं। एसी तात्विक द्वैतराहित सद्वस्तु अद्वैत है।

(४) प्रथम रीतिके अनुसार विवेचनके लिये बहुत विस्तार करना होगा वह अद्वैतसिद्धान्तविद्योतन ग्रन्थमें प्रगट करनेका विचार है। इस ग्रन्थमे २० अध्याय होंगे (दो भाग)। प्रत्येक अध्यायमें प्रतिपाद्य विषय सम्बधी प्राच्य विभिन्न दार्शनिक मत सयुक्तिक प्रदर्शित होंगे, पूर्वपक्ष खण्डन पुरःसर अद्वैतसिद्धान्त विशेषरूपसे (बहुविध युक्तियों द्वारा) द्योतित (प्रकाशित) होगा।

ज्ञान स्वरूप विचार

(क) सर्वप्रसिद्ध अनुभव या ज्ञान विचारका प्रारम्भस्थल है:–

विचारका प्रारम्भ ऐसेही कोई पदार्थके अवलम्बनसे होना उचित है की जिसमे मतभेद न हो। ऐसा पदार्थ है अनुभव। अनुभवका स्वीकार न करनेसे कुछ भी सिद्ध होना संभव नहीं है। "यह मेरा ज्ञात है" "यह मेरा अनुभूत है" इस प्रकार अनुभव या ज्ञान प्रसिद्ध है। विवेचन इसका करना है कि यह ज्ञान स्वतः सिद्ध है या परतः सिद्ध है। ज्ञान असिद्ध न होनेसे वह उक्त उभयकोटीके अन्तर्गत होगा। अनुभव - सर्व सम्मत होनेसेभी उसका स्वरूप विषयक मतभेद है (१)

(१) अनुभवविषयक मतभेद:—ज्ञान वेद्य और अस्वप्रकाश है (न्यायवैशेषिक)। ज्ञान अस्वप्रकाश नही या अपर द्वाराभी ज्ञेय नही, किंतु यह स्वप्रकाश है; स्वप्रकाशका अर्थ यह है कि आपनही अपना विषय हो; ज्ञान निराश्रय क्षणिक आदिमान है (बौद्ध)। ज्ञान स्वप्रकाश, अपना और परका प्रकाशक, आत्माश्रित जन्मादिवान है (प्रभाकर मीमासक)। ज्ञान स्वप्रकाश परंतु जन्मादिमान नही है, वह सधर्मक है उसमे वेद्यधर्म (जीवका सतत उर्ध्व गमनादि धर्म) है (जैन)। ज्ञान स्वप्रकाश, उसमे वेद्यधर्म नही है परंतु वह परिच्छिन्न है (सांख्यपातञ्जल)। अद्वैतसिद्धान्तानुसार ज्ञान वेद्य या अस्वप्रकाश नही किंतु स्वप्रकाश अर्थात् अवेद्य अथच अपरोक्षव्यवहारयोग्य है, स्वप्रकाशका अर्थ आपनही आपनका विषय ऐसा नही किंतु स्वतःही प्रकाश (प्रकाश्य नही ऐसा अर्थ है)। स्वप्रकाशज्ञान क्षणिक या अदिमान नही है किंतु अनादि है। ज्ञान निराश्रय जन्मरहित धर्मरहित तथा परिच्छेदरहित है।

इस हेतुसे यह विचारका विषय होता है। संदिग्ध विषयही विचार्य होता है। पदार्थ अधिगत होनेसे किंवा अनधिगत होनेसे संशय नहीं होता। अधिगत वस्तु निर्णीत होनेसे और अनधिगत वस्तु अदृष्ट होनेसे तद्विषयक संशय नहीं होता। अतएव विचार कालमें ज्ञानका स्वरूप सम्पूर्णरूपसे अज्ञात या सर्वथा विज्ञात न रहनेसे उसके स्वरूप निर्णयार्थ विचार आरब्ध होता है।

(ख) ज्ञान अज्ञात या ज्ञात होकर विषयका सिद्धिप्रद नहीं है:—

यदि ज्ञान स्वत सिद्ध स्वप्रकाश न माना जावे तो कहना होगा कि वह ज्ञात होकर अर्थात् किसी अन्य द्वारा प्रकाशित होकर विषयका साधक होता है या अज्ञात (अप्रकाशित) रहकरही साधक होता है। स्वतः प्रकाश न हो तो परत प्रकाश या अप्र काश होना चाहिये। ज्ञान अज्ञात रहकर स्वविषयका साधक होता है यह कल्पना समीचीन नहीं है। यदि ऐसा होता तो ज्ञानके विषयमें प्रमाण न रहनेसे ज्ञानके स्वरूप सत्ताकीहि सिद्धि न होता। तब वह अन्य विषयोंको कैसे सिद्ध कर सकेगा? किसी भी पदार्थ के सत्ता का निश्चय होनेके लिये उसका प्रकाश होना आवश्यक है। यदि ज्ञानका प्रकाश न रहे तो "वह है" ऐसा निश्चय नहीं हो सकेगा। यदि प्रकाश न होनेसे भी सत्ता का निश्चय होगा तो असत्ताका भी निश्चय क्यों न हो? अतः ज्ञान की सत्ता के निश्चय होनेके लिये वह अप्रकाशित रहना योग्य (सभव) नहीं है। ऐसा कहीं दृष्ट नहीं कि स्वय अप्रकाशमान किन्तु अन्य

विषयोंका प्रकाश कर सके । क्योंकि स्वयं असिद्ध होकर अन्य का साधक कैसे होगा? यदि ज्ञान प्रकाशित न हो, तो स्वतः अप्रकाशरूप विषयका भी प्रकाश नहीं होगा । विषय और ज्ञान यह दोनों अप्रकाश होनेसे जगत की भी अप्रसिद्धि (आन्ध्य) हो जायगी । अतएव ज्ञान अज्ञात होकर विषयोंका साधक है यह पक्ष संगत नहीं है ।

यह कल्पना भी ठीक नहीं कि ज्ञान ज्ञात अर्थात् अन्य द्वारा प्रकाशित होकर विषयोंका साधक होता है । इस पक्षमें ऐसा मानना होगा कि प्रथम ज्ञान के समान ज्ञानका प्रकाशक कोई द्वितीय ज्ञान भी ज्ञात होकर ही स्वविषयोंको सिद्ध करता है । और द्वितीय ज्ञान के प्रकाशके लिये किसी तृतीय ज्ञान की आवश्यकता है और उस तृतीय ज्ञान को भी ज्ञात ही कहना होगा क्योंकि ज्ञात ही विषयके साधनमें समर्थ है । पुनः उसके साधकरूप चतुर्थ ज्ञान की अपेक्षा होगीही और वह भी ज्ञात ही होगा । इस प्रकार पूर्वपूर्व ज्ञान उत्तरोत्तर ज्ञान का सापेक्ष होनेसे ज्ञानधारा अविराम चलती रहेगी और ज्ञानधाराका विराम न होनेसे अनवस्थिति दोष होगा (२) अतः यह मानना ठीक नहीं कि ज्ञान ज्ञात होकर ही विषयोंका साधक होता है ।

(ग) पूर्वपक्षिकर्तृक अनवस्थादोषपरिहार और सिद्धान्तीकर्तृक उसका खण्डनः—

पूर्वपक्ष—अनवस्था दोष तब होगा कि जब सब ज्ञान अवश्य वेद्य

(२) प्रागलोपाविनिगम्यत्वं प्रमाणापगमैर्भवेत्। अनवस्थितिमास्थातुरचाकि-त्वस्य निर्दोषता (खण्डन-खण्ड-खाद्य)

माना जावे। हम सब ज्ञान का अवश्य वेद्यत्व स्वीकार नहीं करते। अत. वह दोष नहीं है। (न्यायवैशेषिक)

सिद्धान्त—अनवस्थाकी निवृत्ति के लिये पूर्वपक्षी को यह कहना होगा कि एक ज्ञान ऐसा है जो अन्य को सिद्ध करता है और वह स्वयं अन्यज्ञान का अविषय है। इस प्रकार जो ज्ञान ज्ञात नहीं होगा उसका सत्त्व नहीं होगा क्योंकि उस विषयमें कोई प्रमाण नहीं है।

पूर्वपक्षी—जिज्ञासा होनेसे वह भी ज्ञात होगा.

सिद्धान्ती—ऐसा कहना उचित नहीं क्योंकि अज्ञातगोचर जिज्ञासा हो नहीं सकि। जिज्ञासाके लिये वह ज्ञान सामान्यरूपसे ज्ञात होना चाहिये। अतः पूर्ववत् अनवस्था दोष है। इसके अतिरिक्त यह भी है कि यदि जिज्ञासित ज्ञान [व्यवसाय] ग्राह्य होगा तो अन्योन्याश्रय दोष होगा। अज्ञातमें जिज्ञासा नहीं होती। जिज्ञासा के लिये ज्ञानका ज्ञान मानना होगा, तब जिज्ञासा होगी और आप कहते हैं कि जिज्ञासा होनेसे ज्ञानका ज्ञान होगा अर्थात् जिज्ञासित (ज्ञानको जानने की जो इच्छा उसका विषयभूत) ज्ञान ही ग्राह्य और ज्ञान जिज्ञासित होनेके लिये ज्ञानकी ग्राह्यता आवश्यक है। इस रीतिसे ग्राह्यतासे जिज्ञासा और जिज्ञासासे ग्राह्यता यह अन्योन्याश्रय दोष है। अतः उक्तपक्ष समीचीन नहीं है।

(घ) ज्ञान स्वतः सिद्ध स्वप्रकाश है:—

उक्त विचार द्वारा प्रतिपन्न हुआकि ज्ञान की प्रकाशरूपता न हो तो असत्त्वापत्ति या असत्त्वापत्ति दोष होता है और उसे परप्रकाश माननेसे अनवस्था दोष होता है। अनवस्था होनेसे मूलभूत प्रथम

ज्ञानकी ही असिद्धि होगी और ऐसा होनेसे उसके विषय की भी सिद्धि नही होगी और जगतके अप्रसिद्धिका प्रसंग आयगा। सुतराम् ज्ञान अज्ञात या ज्ञात होकर विषयका साधक नही होता। पर ज्ञान द्वारा पदार्थोंकी सिद्धि होती है। अंतमें मानना होगा कि ज्ञान की स्वरूपसिद्धि और प्रतीति-सिद्धि स्वतः ही है। असिद्ध और परतः सिद्ध न होनेसे (और दुसरा कोई प्रकार असंभव है) ज्ञान स्वतः सिद्ध स्वप्रकाश है। अन्य प्रकाश की अपेक्षा न रखते हुए जो अपने प्रकाशसे सबका प्रकाशक है वही स्वप्रकाश कहलाता है। स्वप्रकाश होनेसे वह अप्रकाशित नही है। जो अप्रकाशित है उसको स्वप्रकाश नही कह सकते। वह प्रकाश्य भी नही। अन्य कोई उसका ग्राहक न रहनेके कारण वह अविषय है। अविषय होनेसे उसे अन्य प्रकाश की अपेक्षा नही है। इस लिये अनवस्था नही (३)

(ङ) अधिक प्रतिपादन और विक्षपमे नानादोष प्रदर्शनः—

ज्ञान घटादि की समान वर्तमान होकर अप्रकाश नही पाया जाता। यदि ऐसा हो, तो मानना पडेगा कि उसका प्रकाश अन्यके अधीन है। यदि ज्ञान घट की समान अन्य ज्ञान का विषय होता, तो वह विषयरूपसे ही भासित होता न की विषयीरूपसे। परंतु

---

(३)अनवस्था ज्ञप्तौ वा उत्पत्तौ वा ? नाद्यः ज्ञप्त्यन्तरानभ्युपगमात् नोतत्तौ विनाशान उत्पत्तेः व्यभिचारात्।

(श्री रघुनाथकृत खण्डन मणिभूषा—अमुद्रित)

भासित तो होता है विषयीरूपसेही । अत. उसका विषयमे वैल
क्षण्य होनेके कारण ज्ञान का अविपयत्व ही स्वीकार करना
पडेगा । ज्ञान और विषय विजातीय है, परंतु ज्ञान ज्ञानका विजा-
तीय नही है । विषय--विषयी--भाव विजातीयों मे ही पाया जाता
है । अतः ज्ञान अन्य ज्ञान का विषय नही है । अनुभाव्य पदार्थ
अननुभूतिरूप (अस्वप्रकाश) होता है ऐसी व्याप्ति होनेसे जो
अनुभव अनुभाव्य नहीं है उसमे अनुभाव्य पदार्थो के समान
अस्वप्रकाशत्व की सभावना नही की जा सकती । अत. उस अनुभव
का अस्वप्रकाशत्व अनुमानगम्य भी नहीं है । अत ज्ञान स्वप्रकाश है।

उपर निर्देश किया है कि यदि ज्ञान अन्यज्ञान
द्वारा ज्ञेय होगा तो ज्ञानधारा का विराम नहीं होगा । ऐसी
ज्ञानधारा अनुभवसिद्ध भी नहीं है । यदि इस प्रकार ज्ञानधारा चल-
ती रहे तो अन्य विषय के ज्ञान को अवसर ही नही रहेगा । और
बाह्य व्यवहार लुप्त होगा । एक ज्ञान के लिये समस्त जीवन का
काल भी पर्याप्त न होगा । ज्ञानधारा की संतति होनेसे विषय ज्ञान
पुनः उस विषय ज्ञान का ज्ञान, इसरीतिसे चलता रहेगा । इस
प्रकार विषयावगाहि ज्ञान का अभाव नहीं होगा । सुतराम् सुषुप्ति
और मूर्च्छा भी नही हो सकेगी । उस ज्ञान विषयक ज्ञान की धारा
का यदि विराम हो तो वह अतिम ज्ञान स्वयंप्रकाश नहीं ऐसा
माननेसे उसमे सशय उत्पन्न होगा या उसकी असिद्धि होगी ।
सशय होनेसे उसके पूर्व (निम्नमुखी) सर्व ज्ञान सशयरूपी हो
जावेंगे और विषयमें भी संशय होगा क्योंकि विषयीमे संशय
होनेसे विषयमे भी सशय होता है। परतु ऐसा संशय पाया

नहीं जाता। यदि उक्त अन्तिम ज्ञान असिद्ध होगा तो उस ज्ञानसे विषय पर्यन्त सर्व असिद्ध हो जायेंगे (४) यदि इन दोनो दोषोंकी निवृत्ति के लिये अन्त्यज्ञान को स्वप्रकाश माना जावे तो ज्ञानका स्वप्रकाशत्व सिद्ध होगा। स्वविषयक अन्यज्ञान न रहनेपर भी जैसा निरपेक्ष अन्तिम ज्ञान स्वतः प्रकाशमान और अन्य की सिद्धि करनेवाला है वैसा प्रथम ज्ञानभी स्वतः सिद्ध और विषयोंके प्रकाशमें अन्य की अपेक्षा न रखनेवाला है। अतः लाघवतः प्रथम ज्ञान ही स्वप्रकाश मानना चाहिये (५) यदि ज्ञान अस्वप्रकाश होता तो जिज्ञासु पुरुषको ज्ञानके रहते हुए भी ज्ञानके अभावका ज्ञान या ज्ञानविषयक संशय भी होगा। परंतु ऐसा न होनेसे विदित होता है कि ज्ञान का प्रकाश अन्य की अपेक्षा नहीं रखता किन्तु स्वयप्रकाशरूप है (६)

---

(४) उत्तरासिद्धया पूर्वासिद्धौ विषयासिद्धि पर्यन्त व्यसनमापद्येत।

(खडनखडखाद्य–टीका–अमुद्रित–अज्ञातनामा लेखककृत)

(५) यद्यनुव्यवसायाः प्रोच्यन्ते तदा अनवस्था विषयान्तरसञ्चाराभावः ननुभवश्च तद्विरामे विषयपर्यन्त सशय इत्यगत्याज्ञान स्वप्रकाशमेषितव्य

(खण्डनखण्डखाद्य शांकरी टीका)

(६) ज्ञानान्तरवेद्यत्वे ज्ञानस्य ज्ञानान्तरेण कः सम्बन्धः? न तावत् संयोगः द्रव्यत्वात्, नापि समवायः आत्मगुणयोरन्योन्यं तदयोगात्, नापि तादात्म्यं ज्ञयोरभिन्नयोर्वा तादात्म्यायोगात्, नापि विषयविषयीभावः तस्य द्रव्याद्य-भावानन्तर्भावाभ्याम् असम्भवात्। न चासम्बद्धमेव ज्ञान ज्ञानान्तरज्ञेयम् तिप्रसगात्।

(खण्डनखण्डखाद्य विद्यासागरी टीका)

उल्लिखित विचार द्वारा सिद्ध हुआकि ज्ञान ज्ञानान्तर द्वार
नहीं है अन्यथा अनवस्थादि दोष होंगे । स्वसत्तासे प्रका
होनेके कारण ज्ञान के लिये ज्ञानांतरकी अपेक्षाको कल्पना भ
की जासकती । ज्ञान स्वज्ञेय भी नहीं, क्योंकी स्वयं ही विषय
स्वयं ही विषयी यह विसंगत है। स्वयं ही अपना
होनेसे जो कर्म है वही कर्ता होगा ।
कर्ता और कर्म एक नहीं हो सकते। एकही क्रियाके
कर्ता साधनरूपसे गौण होता है और कर्म फलरूपमे प्रधान
है। युगपत् एक क्रियाके प्रति एकही का गुण-प्रधानभाव
हो सकता। कर्तृत्व (इतरकारकाप्रयोज्यत्व) और कर्मत्व (इत
रकप्रयोज्यत्वरूप) विरोधी धर्म है। विरूद्ध धर्मद्वयका
समावेश असंभव है। संपूर्ण अभेदमे विषय-विषयीभाव - संबंध
होता। अभेद संबंध नहीं है। संबंध भेद-गर्भित होना है ।
अभेद संबंध हो तो रूपमे रूपवैशिष्ट्य (रूपमे रूप है ऐसा) प्र
होगा। यह कहना उचित नहीं कि एकके अंश–भेदसे ग्राह्य-ग्रा
क भाव होता है। ग्राहकांशका ग्राह्यत्व होनेसे पुनः दुसरे अंश
कल्पना करनी होगी, इस प्रकार अनवस्था होगी (७) ग्राह
ग्रका स्वयंप्रकाशत्व होनेसे वही चेतनरूप प्रकाश होगा, अन्य
श जड होगा। अतः स्वप्रकाश का अपनेमे विषयविषयीभाव :

(७) सर्वस्य चैतन्याविषयत्वात् न किञ्चित् चैतन्यसाधनं
न्यप्रभत्वात् स्वतन्त्रं । ... ग्राहकस्य ग्राह्यत्वे अनवस्थानात्।
(आनन्दपूर्ण विद्यासागरविरचित न्यायकल्पलतिका=बृहदारण्यक–भाष्यवार्ति
टीका—अमुद्रित)

हो सकता। जो विषय है वह सापेक्ष है और जड है, वह प्रकाशका स्वरूपभूत नही हो सकता। अतएव ज्ञानको स्वज्ञेय नहीं कह सकते (८) ज्ञान अज्ञेय (अभासमान) भी नहीं, कारण वह स्वतः सर्व जीवको अनुभवसिद्ध है। असंदिग्ध होनेसे वह अनुमेय भी नही। परिशेषतः ज्ञान स्वप्रकाश है। जो ज्ञेय नहीं परंतु भासमान है वही स्वप्रकाश है। ज्ञान अपना या अन्यका विषय न होकर भी अपरोक्ष व्यवहारका हेतु होता है। अन्य वस्तु अपेक्षा ज्ञानका स्वभावभेद होनेके कारण ज्ञान-विषयक ज्ञान न होकर भी ज्ञानविषयक व्यवहार (जानामि भाति इत्यादि) होता है। ज्ञानके व्यवहारमें तदभिन्न प्रकाशही हेतु है, तद्विषय हेतु नही (अर्थात् वह विषय नही होता)। ज्ञानव्यवहारमे ज्ञानही व्यवहार्य और प्रकाश है, उसका विषयत्व प्रयोजन नही है।

(च) धाराज्ञान विचार:—

घटादि ज्ञानधाराके अनन्तर एतावत्काल घटको अनुभव कर रहा हूं इस प्रकारसे घटादि ज्ञानधारा और उसके आश्रयरूप अहंकारका अनुसंधान होता है। यह अनुसंधान पूर्वानुभजन्य है।

---

8 (a) If, however, the absolute is to appear to itself, it must on its objective side be dependent on something foreign. But this dependence does not belong to the absolute itself but merely to its appearance. (Schelling's Works)

(b) In so far as consciousness is an object of consciousness it is no longer consciousness.
(Gentile's "Theory of Mind as Pure Act")

अननुभूत पदार्थ मे स्मृति असंभव है। इस स्मृतिकी उपपत्ति देनेके लिये कैसा ज्ञान मानना उचित है उसका विवेचन किया जाता है। घटगोचर-धाराज्ञान द्वारा उक्त स्मरण नही हो सकता। धारा और धाराश्रय धाराज्ञानके विषय नही है, घट ही धाराज्ञानका विषय है। अतएव इस धाराज्ञान द्वारा इस ज्ञानकी अविषयरूप जो धारा और उसका आश्रय इन उभयोंका स्मरण नही हो सकता। ज्ञान स्वविषयमे स्मृति उत्पादन करता है। अतएव ज्ञान या तदाश्रय घटादिगोचर धाराज्ञानका विषय न होनेसे उक्त धाराज्ञान द्वारा उक्त स्मृतिकी उपपत्ति की नही आ सकती। सुतरां 'तदतीत अपरज्ञान मानना होगा। धारा और उसके आश्रयके साक्षी अहंकारधर्मातिरिक्त अनुभव विना तत्कालमे उक्त अनुसंधान उपपन्न नही है। वह अनुभव स्वप्रकाश है। स्वप्रकाश-पक्षमे उक्त अनुपपत्ति नहीं होती। स्वप्रकाश-पक्षमे तत्तद् घटादि ज्ञानसे अथवा तत्तद्घटादि-ज्ञानजन्य तत्तद्ज्ञान-विषयक तत्तद् संस्कारसे एक स्मृति होनेसे अनेक वर्णावगाहि एक स्मृतिसे जैसी तावत्वर्णका स्मृति होती है ऐमेही चरमक्षणीय एक स्मृतिसे तावदनुभवकी सिद्धि होगी। तात्पर्य यह है कि स्वप्रकाश-पक्षमे घटज्ञानके संस्कारके लिये अपरज्ञानकी (घटज्ञानके ज्ञानकी) आवश्यकता नही है; स्वप्रकाश ज्ञानही स्वविषयक और स्वविषय-विषयक संस्कारका जनक है। (९) अतएव धाराविच्छेद न

---

(९) नचनित्यानुभव नाशाभावाद् कथसंस्कारोदय इतिवाच्यम् तद्विषयीभूत तत्तद् ज्ञाननाशात् तदुपपत्तेः (अद्वैतनुधाकांति अमुद्रित)।
वेदान्तशास्त्रमे प्रकृत विषयसंबधी त्रिविध मत है। एक पक्षमे घटविषयक वृत्तिनाश द्वारा जो संस्कार होगा वह जैसा घटविषयक होता है ऐसा अहंविषयक

होनेसे भी ज्ञानसंस्कार हो सकेगा और चरम क्षणमे तादृश संस्कारजन्य एक स्मरण भी हो सकनेसे धाराविषयक तावदनुवकी सिद्धि होती। अतएव प्रतिपन्न हुआकि ज्ञान ज्ञानद्वारा प्रकाशित नही है किंतु स्वप्रकाश है •

(छ) अद्वैतवादिसम्मत स्वप्रकाश शब्दका अर्थः—

स्वप्रकाश अर्थ स्वविषय नही है किंतु प्रकाशांतर के संबंध विना प्रकाशमान है अथवा स्वव्यवहारमे स्वातिरिक्त ज्ञानान्तरकी अपेक्षा-रहित है। दृष्टांत–जैसे तेज (आलोक) अपने अविरुद्ध (तमोऽन्य-तिरिक्त) विषयोंके चाक्षुष ज्ञानमे तेजरुपसे कारण होता है (स्वमे और विषयमें), तेज अपने अतिरिक्त अपने अविरुद्ध विषयके चाक्षुप ज्ञानमे केवल तेज-रुपसे नही किं तु विषयसंबंधी तेजरुपसे कारण होता है (केवल विषयमे), स्वविषयक ज्ञानमे अभेदरुपसे कारण होता है (केवल स्वमें)। इस रीतिसें व्यवहर्तव्यका जो ज्ञान वह व्यवहार मात्रमें प्रकाशस्वरूपसे कारण है (ज्ञान और विषय दोनोंमे), अपने अतिरिक्त विषयके व्यवहारमे तद्विषयक प्रकाशरूपसे (केवल विषय मे) कारण है, और स्वव्यवहारमें अपनेसे अभिन्न प्रकाशरूपसे कारण है। अतः ज्ञानका प्रकाशत्व विषयत्व-प्रयुक्त नही होता किन्तु ज्ञान-स्वरूप-विशेष-प्रयुक्त प्रकाशत्व होता है। ज्ञान

और वृत्तिविषयक भी होते है। संस्कारकी प्रयोजकता (यद्वृत्त्यवच्छिन्न यत्प्रकाशते—यह प्रयोजक है) उक्त पक्षमे तुल्य है। अतएव अहं-आकारवृत्ति न माननेसे भी नित्य साक्षीद्वारा उनका स्मरण उपपन्न होगा। अपर दो पक्षमे वृत्ति मानी जाती है। एकमे अन्तःकरणवृत्ति अपरमे अविद्यावृत्ति।

अपने अविषयरूप अपने स्वरूपमें व्यवहारका प्रवर्तक होता है। ज्ञान अपने सजातीय अन्य ज्ञानकी अपेक्षा-रहित होकर व्यवहार-गोचर होनेसे और परत्र व्यवहारका हेतु होनेसे स्वतः सिद्ध है। अविषय होकरभी प्रकाशमान होनेसे ज्ञान संबंधमें संशय नहीं होता।

(ज) स्वप्रकाशत्व विचारका विषय होः—

स्वयं-प्रकाश ज्ञान स्वयंप्रकाश-विषयक अनुमानका गोचर होनेपर भी उसका स्वयंप्रकाशित्व अव्याहत रहता है। वृत्तिका विषय होनेसेभी वह स्फुरणका अविषय है। यह नही की, प्रमाणका विषय होनेसेही उसकी दृश्यता होगी। दृश्य वही होता है जो अपने से भिन्न संवित् की नियत अपेक्षा रखता है। ज्ञान वैसा नही है। अथवा शशविषाण अविषय होनेपर भी उसमें जैसे प्रमाण द्वारा विषयत्व का निषेध किया जाता है वैसे अविषय ज्ञानमें भी प्रमाण-द्वारा उससे भिन्न ज्ञानकी अपेक्षा निवारित होती है। अत.उक्त प्रमाण, ज्ञान के स्वप्रकाशत्वके प्रतिपादनमे साधक होता है (१०)

(झ) स्वप्रकाश ज्ञान नित्यः—

अब ज्ञानका स्वप्रकाशत्व सिद्ध होनेके पश्चात् उसके नित्यत्व विषय का विवेचन किया जाता है। जिसका प्रागभाव (प्राक्कालीन

---

(१०) (क) नतावन्व्याघात· अनुमानगोचरस्य तदगोचरत्वाप्रसाधनात्। न च प्रमाणविषयत्वमात्रेण दृश्यता, साक्षित्वातिरिक्तसंविदपेक्षानियति·, न सा आत्मनो अस्ति मुक्तो अपि सिद्धे

(ब्रह्मसूत्रभाष्यप्रकटार्थ—अमुद्रित)

(ख) *निर्धर्मकेऽपि न विषयत्वादि धर्माविरोधोऽपि काल्पनिक धर्माणाम्* अभ्युपगमात् (तत्त्वदर्पण—अमुद्रित)

अभाव) है उसकी उत्पत्ति है और वह आदिमान है । जिसका प्रागभाव नहीं उसका आदिभी नहीं है अर्थात् वह अनादि है । अभाव विना जन्मादि सिद्ध नहीं होते । प्रागभाव अज्ञात होनेसे जन्मका निश्चय नहीं होता । ज्ञानका प्रागभाव या ध्वंस सिद्ध नहीं हो सकता । अपने प्रागभावकालमे और प्रध्वंस–कालमे स्वयं ज्ञान-रूप गृहिता ही नहीं होता । और अपने अस्तित्व–कालमें ग्राह्यभूत अपना अभाव (प्रागभाव और ध्वंस) नहीं रहता। स्वयंप्रकाश स्फुरण अन्य स्फुरणका अगोचर होनेके कारण अन्य व्दारा उसका प्राग-भाव या ध्वंस गृहीत नहीं होता। अतः जैसे घटपटादि उत्पत्तिशील पदार्थोंके अभाव संवित् - साक्षीक है वैसे ज्ञानका अभाव संवित्-साक्षीक या अनुभवसिद्ध नहीं हो सकता । अतः गृहीतृ असंभव होनेसे गृहीतृसापेक्ष प्रमाण का संचार नहीं होगा । सुतरां ज्ञानक प्रागभाव और ध्वस सिद्ध नहीं होगा । स्वतःसिद्ध स्वप्रकाशके प्रागभावादि स्वतः या अन्यद्वारा सिद्ध न होनेसे वह नित्य है । ज्ञान स्वप्रकाश होनेके कारण वह रूपरसादि की समान किसी क गुणभूत (सापेक्षधर्मरूप) नहीं है। गुणभूत न होनेसे वह निराश्र-य और अवधिभूत (निरवधि) होगा । वह अनित्य नहीं । अनित्य-पदार्थ सापेक्ष और सावधिक होता है । अवधिका ग्रहण किये विना अनित्यत्व निरूपित नहीं होता । स्वप्रकाशस्वरूप निरवधिक और सापेक्ष न होनेसे अनित्य नहीं है । निराश्रय होनेके कारण भी स्वप्रकाशका कारणाश्रितत्वरूप कार्यत्व (अनित्यत्व) नहीं हो सकता । निरवधि नाश की प्रसिद्धि न होनेसे सर्वावधिभूत प्रकाशके नाशका निरूपण नहीं कीया जा सकता । जो स्वप्रकाश है वह

आगन्तुक प्रमाण का सापेक्ष नहीं होगा अतः तद्विषयक प्रमाणाभावके कारण उसका अनवभास नही होगा। जो कोई उत्पत्ति-विनाशशील है उसकी उत्पत्तिविनाशशीलता जानने के लियेभी उनके उत्पत्ति विनाश तथा स्थितिके क्षणोका एकमात्र अविकृत साक्षिस्वरूप ज्ञानकी अस्तित्व आवश्यक है। सर्वका उत्पत्ति-विनाश-द्रष्टा स्वयं उत्पत्यादिमान नही है क्योंकी स्वोत्पत्यादिका स्वयं दर्शन अनुपपन्न है। सर्वावस्थाका द्रष्टा निर्विकार है। काल और कालिक विकार समूहोके साक्षिरूपसे सर्वविध विकाररहित और कालिक परिच्छेदशून्य ऐसा स्वप्रकाशज्ञान न होता तो काल और तदकृत विकारादि का ज्ञान ही संभव नही होता। (११)

उल्लिखित विचारस्थलमे सर्वसाधारण अनुभवका विचार के प्रारम्भस्थलरूपसे ग्रहण किया है; और उसके अनित्यत्वका विचार न करके तान्मिश्रित प्रकाश स्वरूपके विवेचन द्वारा उस प्रकाशका स्वप्रकाशत्व प्रदर्शित हुआ। तदनन्तर स्वप्रकाश ज्ञानका नित्यत्व निर्विकारत्व प्रतिपादित हुआ। अपरएक विचारपद्धति अनुसारसे प्रथमतः अनित्य ज्ञानके दिकसे विचार करते करते उस परिणाम

(11) The relation of events to each other as in time implies their equal presence to a subject which is not in time There could be no such thing as time if there were not a self-consciousness which is not in time ....If consciousness were a process in time it would not be a consciousness of them forming such a process.

(Green's " Prolegomena to Ethics")

और विभिन्नताका सिद्धिप्रद साक्षिज्ञान प्रतिपन्न होता है। वह अवधिभूत ज्ञान स्वप्रकाश नित्य है। अनित्य ज्ञानका अवधिभूत ज्ञान नित्य होगा। अनित्य ज्ञान परस्पर व्यभिचारी (अननुगत) होनेसे तथा वह जिस आश्रयमे उत्पन्न होता है उसके साथ तादात्म्य प्राप्तिसे (अर्थात् उसके स्वरूपभूत) वह आश्रय विकारप्राप्त होते हैं इससे ज्ञानकी उत्पत्ति स्थिति और नाश इनकी प्रतीति उक्त अवस्था या अवस्थावान द्वारा नही हो सकती। अतएव अवस्थारहित अथच अवस्थामे अनुगत (आध्यासिक तादात्म्यसंबंधयुक्त) ऐसा एक नित्य प्रकाश आवश्यक है। सुख दुःखादिके विचार द्वारा यह सिद्ध होता है। स्वप्न और सुषुप्तिके विचार द्वाराभी उक्त सिद्धान्त प्रतिष्ठित होता है। (१२)

---

(१२) बुद्ध्याद्युत्पत्तिसमनन्तरमेव कि त्वयेदानीमिद बुद्ध तवेदमिष्ट वेत्यादि परेण पृष्ठस्य स्वबोधादौ न सशय इति सर्वजनीन सच नियमेन सशयाभावो ग्राह्यनिश्चयनिर्वाह्यः इतरथा ग्राह्यनिश्चयादि सशयसामग्रीसत्वेन तदभावानुपपत्तेः बुद्ध्याद्युत्पत्त्यनन्तरञ्च नियमेन मानसतन्निश्चयोपगमे मानस ज्ञानानवस्था स्यात् न स्याच्चेष्टानिष्टज्ञानादिना सुखदु खानुत्पत्तिः। अतएव बुद्ध्यादीनां स्वप्रकाशत्व कल्प्यते इति चेन्न। लाघवेन तद्गोचर चिदात्मन एकस्यैव स्वप्रकाशत्वे तदुपपत्तौ बुद्ध्याद्यनन्तकार्ये स्वप्रकाशत्व कल्पने गौरवात् इच्छादेरपि सविषयस्यार्थप्रकाशत्वप्रसगेन बुद्धिवैजात्यायोगाच्च तस्माद्बुद्ध्यादि गोचर नित्य साक्षात्कार एकोऽभ्युपेय इति भावः। किञ्च स्वप्ने बाह्येन्द्रियाणा-मुपरतत्वान्मनसश्च बहिरस्वातन्त्र्यात्तदा गजरथादेरपरोक्षतया सर्वानुभवसिद्धत्वात्त-त्साधकनित्यानुभवोऽभ्युपेयः तथा सुप्तोत्थितस्य सुखमहमस्वाप्समिति परामर्श दर्शनात्स्वापे तन्मूलानुभवो नित्योऽभ्युपेयः तत्र सर्वेन्द्रियाणामुपरतत्वेन सुषुप्ति भगप्रसगेन अनित्यज्ञानायोगात् (भेदधिक्कार सत्क्रिया)

यह सब विचार (साक्षिविवेक) अन्यत्र (अद्वैतसिद्धांत विद्योतन ग्रंथमे) प्रगटित होंगे। स्वप्रकाशरुप ज्ञान प्रकाशान्तर का अगोचर होनेसे वह स्वरुपतः या भेदादिधर्मिरुपतः मानान्तरसे सिद्ध नही होता, और स्वयं स्वसत्तामात्रका साधक है। भेदादिका साधक नहीं है। अतएव साधकके अभावसेही ज्ञानके भेदादि असिद्ध है। अतएव ज्ञानस्वरुप अद्वैत है।

द्वितीयाध्याय

सत्स्वरूप विचार

(क) अध्यायका प्रतिपाद्य विषयः–

ज्ञानस्वरूपका विचार हुआ । अब सत्स्वरूपका विचार करते है। पश्चात् ज्ञानस्वरूप और सत्स्वरूपकी एकता निरूपण करेंगे । पदार्थ, धर्म या धर्मिरूप होगा अथवा तत्त्वतः धर्मी या धर्म न होनेसेभी धर्मी या धर्मरूपसे प्रतिभात होगा । जो धर्मी या धर्म नहीं हैं वह स्वरूपतः विचारका विषय नहीं हो सकता । धर्मधर्मि-भाव अवलबन पूर्वक विचार प्रवृत्त होता है । जो असदृष्ट है उसमे तर्क अवतरित नहीं हो सकता क्योकि सदृष्ट ग्रहणपूर्वकही तर्ककी प्रवृत्ति होती है । जो निर्विशेष है वह स्वरूपतः विचारका विषय नही हो सकता । यदि निर्विशेष तत्व धर्मिरूपसे प्रतिभात हो, तो कल्पित धर्मधर्मि-भाव अवलम्बन पूर्वकहि विचार साधित हो सकेगा। तोभी सत् का स्वरूप कैसा है उसका विवेचन करते है, क्या वह परिछिन्न वस्तुस्वरूप है? अथवा वस्तुओंका धर्मरूप है किंवा अनुगत धर्मिरूप है? (१)

---

(१) सत्स्वरूपविषयक मतभेद है । किसीके मतमे (साख्य पातजल) सत् भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप है, अपरमतमे (न्यायवैशेषिक) सत्ता अनुगत पराजातिरूपधर्म है । मीमासक लोग सत्का ज्ञानका सम्बन्धीत्व (प्रभाकर) या कालका सम्बन्धीत्व (भट्ट) कहते है । इसप्रकार मतभेदसे सत्व अर्थक्रियाकारित्व (बौद्ध) उत्पादव्ययध्रौव्ययोगीत्व (जैन), वर्तमानत्व अस्तित्वरूपधर्म, विधिप्रत्ययवेद्यत्व, निषधायोग्यत्व, असत्यव्यावृत्तित्वा

(ख) भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप सत् नहीं है:–

घटस्सन् पटस्सन् ऐसा बोध प्रसिद्ध है। घटपटादि पदार्थ-निमित्त जो व्यवहार वह सद्रूप त्याग न करते हुएही प्रतीत होता है। अब यह विचार्य है कि वह घटपटादि भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूपही सत् है अथवा सत् का और कुछ स्वरूप है। स्वरूप भिन्न भिन्न है। घटपटादि वस्तुस्वरूप सत् होनेसे सत्भी भिन्न भिन्न होगा। भिन्न भिन्न सत्द्वारा 'यहवस्तुसत् है' 'यहवस्तुसत् है' ऐसी अनुगत बुद्धि सुसंगत नहीं है। घटादियोंकी परस्पर विलक्षणता होनेसे इसमें सन्घटः सन्पटः इत्यादिरूपसे एकाकार बुद्धि नहीं हो सकती। यदि अनुगत सद्बुद्धिका कारण अननुगत भिन्न भिन्न स्वरूप सत् होगा तो जाति आदि अनुगत पदार्थ स्वीकार निष्फल हैं क्योंकि सर्वत्रही मनुष्यादि अननुगत पदार्थ द्वाराही अनुगत मनुष्यत्वादि जाति बुद्धि उत्पन्न होगी। वस्तुस्वरूपसे विलक्षण अनुगत सत् न रहनेसे अनुगत सद्बुद्धि विषयशून्य होगी। 'वही यह दीप है' ऐसा अनुगत प्रत्यय और व्यवहार रहते हुएभी वहांपर दिपज्वालाके परिमाणादिका भेदही भेदक होता है परतु इसस्थलमें ऐसा कुछ नहीं है। अतएव अनुगत बुद्धि होनेसे अनुगत विषय मानना उचित है। सन् सन् ऐसी प्रतीतिके अनुसार वस्तुस्वरूप सत् नहीं है। वस्तुस्वरूप सत् होनेसे भिन्नता लोप पायगी क्योंकि सबही सत्

प्रमाणाविषयत्व, सदुपलम्भप्रमाणागोचरत्व, व्यपदेशानिपत्व इत्यादि है। वेदान्तमतमें सत् अखण्डज्ञान है, वह भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप या धर्मरूप नहीं है, किन्तु अनुगत धर्मीरूपसे प्रतिभात होता है।

है । घटःसन् इसरूपसे प्रतीयमानसत्ता घटादिस्वरूप नहीं है । जैसे घटस्सन ऐसा अनुभव होता है वैसा घटघट यह अनुभव नही होता । घटादि स्वरूपही यदि सत् होता तो वस्तुका द्वैरूप्य अयुक्त होनेसे वह घटादि सर्वदा सत्ही होते । ऐसा होनेसे उनका उत्पत्ति नाशही न होता । सर्वथा सत् होनेसे उत्पत्तिके पहिले और नाशके अनन्तर भी उसकी उपलब्धि होती । घटादि स्वरूपही सद्बुद्धिका विषय है ऐसा कहनेके लिये घटशब्द और सत्शब्दका एकार्थत्व कहना होगा । किंतु यह अनुपपन्न है । सत् शब्दका घटादि पदसे सह-प्रयोग अयुक्त है । ऐसा होनेसे सद्बुद्धि और घटादि बुद्धिका अवैलक्षण्य हो जायगा । सन घटः सन्पटः ऐसा बोध विशेष्य-विशेषण-भावमूलक है । विशेष्य विशेषणस्वरूप नहीं होता अन्यथा विशेष्य-विशेषण-भावही असिद्ध है । अतएव वस्तुस्वरूप सत् नहीं है। वस्तुके साथ संबंध होनेमे सत् वस्तुस्वरूप नहीं है । सपूर्ण अभेदमे संबंध नहीं होता । "स्वरूपाना परस्परव्यावृत्तेरव्यापकत्वादलक्षणं" (२)

---

(2) (a) Plurality must contradict independence If the beings are not in relation, they cannot be many; but if they are in relation, they cease forthwith to be absolute. For, on the one hand, plurality has no meaning, unless the units are somehow taken together. If you abolish and remove all relations, there seems no sense left in which you can speak of plurality. But, on the other hand, relations destroy the real's self-dependence. For it is

(ग) सत् अस्तित्व (वृत्तित्व) आदिस्वरूप नही हैः–

सत्सत् प्रतीति सर्वत्र अस्तित्वरूप धर्मकोही विषय करती है ऐसा कहना उचित नही है। अस्तित्वको किंचित् संबंधसे वृत्तित्वरुप कहना आवश्यक है। यदि वह समवाय संबंधसे अवछिन्न वृत्तित्वरुप होगा तो नित्य द्रव्यमे नही रहेगा क्योंकि नित्य द्रव्य

---

impossible to treat relations as adjectives, falling simply inside the many beings. And it is impossible to take them as falling outside somewhere in a sort of unreal void, which makes no difference to anything. Hence .... the essence of the related terms is carried beyond their proper selves by means of their relations And, again, the relations themselves must belong to a larger reality. To stand in a relation and not to be relative, to support it and yet not to be infected and undermined by it seem out of the question Diversity in the real cannot be the plurality of independent beings.

(Bradley's "Appearance and Reality." Ed. I)

(b) The realist's many beings, as defined, are defined as wholly disconnected; and they must remain so. You cannot first say of them, for instance, that they are logically independent, and then truly add that nevertheless they are really and causally linked. No two of them are in the same space; for space would be a link. And just so, no two are in the same time; no two are in physical

कहीभी कभीभी समवाय संबंधसे नही रहता। अथच नित्य द्रव्यमे आस्तित्व तो है। यदि आस्तित्व संयोग। संबंधावाच्छिन्न वृत्तित्वरुप होगा तो गुणादिमे वह वृत्तित्व नही रहेगा क्योंकि गुण संयोगसंबधसे नही रहता (द्रव्यकाहि संयोग होता है नकि गुणाक्रियादिका (३)

---

connection; no two are parts of any really same whole. The mutual independence, if once real, and real as defined, cannot later be changed to any form of mutual dependence.

(Royce's " The world and the Individual " First series The four historical conceptions of Being.)

(३) इसस्थलमे वैशेषिक और नव्य नैयायिक सम्मत पदार्थविभागका संक्षिप्त परिचय देते है। इससे परवर्ति विचार सुगमबोध्य होगा। पदार्थ सप्तविध है, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, विशेष (परमाणुका परस्पर भेदक पदार्थ) और अभाव (प्रागभाव प्रध्वसाभाव अत्यताभाव और अन्योन्याभाव)। द्रव्य पदार्थ नवविध–पृथिवीअपतेजवायुआकाश कालदिग् आत्मामन। नित्य और अनित्य भेदसे द्रव्य द्विविध है। सावयव द्रव्य अनित्य, निरवयव द्रव्य नित्य। परमाणु नित्य, कार्य अनित्य। पृथिव्यादि चार भूतके परमाणु नित्य है। आकाश काल दिक् आत्मा मन येभी नित्य द्रव्य है। रुपरसादि गुण चतुर्विंशति प्रकार है। कर्म पचप्रकार। सामान्यका अर्थ जाति। जाति अनुगत प्रत्ययद्वारा सिद्ध होती है। एकही सबधसे कोईभी वस्तु अनेक वस्तुओंमे अवाधित होनेसे उसको अनुगत कहते है। प्रत्येक घटमे 'घट' 'घट' ऐसी अनुगत प्रतीति है। यह अबाधित अनुगत बुद्धि अनुगत निमित्त जनित होती है यह मानना होगा।

यदि 'अस्तित्व' कालिक संबंधावछिन्न वृत्तित्वरूप होगा तो सर्व जन्य पदार्थोंका एक कालमे वृत्तित्व न होनेसे निरुपक कालभेदसे उस अस्तित्वकाभी भेद आवश्यक है। सत् सत् प्रतीति महाकाल वृत्तित्वको विषय करती है ऐसा कहनाभी संगत नहीं है। उपाधि व्यतिरेकसे महाकाल विषयक प्रतीतिकाभी स्वरसतः अभाव होनेसे 'इदानीं अस्ति' 'तदानीं अस्ति' ऐसी प्रतीतिही आनुभविक है

अतएव सकल घटमें घटत्व जाति है। ऐसेही सकल द्रव्यमे द्रव्यत्व, सकल गुणमे गुणत्व और सकल क्रियामे क्रियात्व सिद्ध होता है। कोईभी व्यक्तिके नाशसे जाति नष्ट नहीं होती, अपर व्यक्तिमे जाति अभिव्यक्तही रहती है। अतएव वह नित्य है। जातिमे अपर जाति नहीं है। जाति जातिमान होनेसे अनवस्था होगी। जातिमे जाति, दोषोक्त जातिमे जाति इस प्रकारसे अप्रमाणिक असख्य पदार्थ-कल्पनाप्रयुक्त अनिष्ट प्रसग होनेसे अनवस्था होगी। द्रव्यत्व (*एतदन्तरभूत घटत्व पटत्वादि*) गुणत्व (*एतदन्तर्गत नीलत्वादि*) और कर्मत्व जातियोंसे व्यतिरिक्त सत्ता जाति है। वह उन सबकी परस्पर व्यभिचारी नहीं है किन्तु द्रव्य गुण कर्म इन तिन पदार्थोंमेही रहती है। इस हेतुसे इसको पराजाति कहते है। इस नित्य व्यापक जातिके साथ सबध होनेकी कारणही द्रव्य गुण कर्म "है" "सत्" इत्यादि प्रतीतिगोचर होता है। यह सत्ता—सामान्य सामान्यादि चार पदार्थोंमे रहती नहीं। उन चार पदार्थोंमे सामानाधिकरण्यसे 'सत् प्रत्यय' होता है। अर्थात् द्रव्य गुण कर्म इन तिन पदार्थोंमे सत्ता साक्षात्सबधसे रहती है उस अधिकरण सबसे सामान्यादिभी रहते है। अतएव परपरा संबधसे सामान्यादिमे सत्ता प्रतीति होती है (प्रत्यक्षगम्य होती है)। गुणी (द्रव्य)और गुण पृथक, द्रव्य और क्रिया पृथक, व्यक्ति और जाति पदार्थ पृथक, किंच उनकी अपृथकसिद्धि होती है; यह जिसके द्वारा साधित होता है उस —— नाम समवाय है। समवाय, संबंधिद्वयसे पृथक पदार्थ है।

इसलिये वहांपर उपाधिभेदसे भिन्नकाल–वृत्तित्व–समूहकीहि अवगति होती है यह स्वीकार करना होगा। अतएव अस्तित्वरूप धर्मद्वारा सत् सत् विषयक अनुगत प्रतीतिकी उपपत्ति प्रदान नहीं की जा सकती। सत् सत् प्रतीति स्थलमें वर्तमानकाल-सम्बन्धित्वहि अस्तित्व है ऐसा कहना सगत नही है क्योंकि अस्तित्वकाही त्रैकालिक अन्वयभान होता है। सत् विधिप्रत्यय - विषयत्वरूपभी नहीं है। ऐसा होनेसे रज्जुसर्पादिकाभी सत्यत्त्वापात होगा और उसके अभावका असत्यत्वापात होगा और विभ्रमाविभ्रका विपर्यय हो जायगा। बाधाभावभी सत् नहीं है। इसस्थलमे विचार्य है कि आपाततः बाधाभाव अथवा सर्वथा बाधाभाव है? प्रथम पक्षमे मृगतृष्णिका जलादिमे अतिव्याप्ति होगी। उत्तरपक्षमे वह अस्मदादिके प्रत्यक्षका अगोचर है। अथच सत् अपरोक्ष है।

(घ) सत् जातिरूप धर्म नहीं है।

जात्यादिमे जाति नही रहती अथच उन जात्यादि पदार्थमेंभी सद्व्यवहार होनेसे सत् जातिरुप धर्म नही (है४)विषय–वैलक्षण्यसे प्रतीतिवैलक्षण्य आवश्यक होनेसे अथच द्रव्यादिमे और जात्यादिमे सत्प्रतीतिके वैलक्षण्यका अभाव होनेसे वह जातिरूप धर्म नहीं है किंतु सर्वानुस्यूत अपर कुछ है।द्रव्यसत् गुणसत् कियासत् जिसप्रकार प्रतीत

(४) सत्ता च न द्रव्यगुणकर्मवृत्तिरेका प्रत्यक्षसिद्धा जातिः। धर्मादिनामतीन्द्रियत्वेन तत्र प्रत्यक्षायोगात् जात्यादावपि सद्व्यवहाराच्च। ········· सामान्यविशेषसमवायाः निःसामान्या इत्यंगीकारात् सत्तासामान्यसंसर्गासम्भवात् तेषाम् अभावत्वप्रसंगः

(श्रीरघुनाथविरचित पदार्थतत्वनिरूपण)

होता है उसी प्रकार घटमें पटत्व का अभाव सत् है, पटमें घटत्वका अभाव सत्, ध्वंस सत् ऐसा अनुभव होता है। नैयायिक मतानुसारसे अभावमें सत्ता जाति स्थित नहीं है अन्यथा सत्ता-संबंधसे वहभी भावपदार्थ हो जायगी। अथच द्रव्यादि भावपदार्थमें जैसी सत्प्रतीति होती है ऐसी अभावमेंभी सत्प्रतीति होती है। अतएव सत्ता जातिरूप धर्म नहीं है। द्रव्यादित्रयमें साक्षात् संबंधसे (५) सामान्य विशेष समवाय और अभाव इन पदार्थचतुष्टयमें परंपरा संबंधसे सत् अवस्थित है ऐसी कल्पनाभी संगत नहीं है क्योंकि साक्षात् परम्परा संबंध द्वयसे जो संबद्ध है उनकी समानाकार प्रतीति सुपपन्न नहीं हैं। अनुगत एकाकार बुद्धिका एकरूप संबंध विषयत्वही कहना उचित है अन्यथा प्रमा प्रमेय इस बुद्धि द्वयकेसमान आकारभेद प्रसंग होता। यदि इनका साक्षात् और परम्परारूप संबंध होता तो उस वैलक्षण्यका भान होना आवश्यक है। विलक्षणताके भान बिना यह विलक्षण संबंधयुक्त है ऐसा प्रत्यक्ष कैसे होगा ?। एकरूप प्रतीति एकरूप विषयसेही सिद्ध होती है। उस एकरूप प्रतीतिस्थलमें संबंधका भेद और स्वरूपकी भेद कल्पना करना अनुचित है। अनेक घटमें अयंघट अयंघट एतादृश एकरूप प्रतीति होती है। वह एकरूप प्रतीति घटत्वरूप एकरूप विषयसेही सिद्ध होता है। अतएव घट व्यक्तिमें उस घटत्व धर्मके संबंधकी भेदकल्पना जैसे अनुचित है वैसेहि सत् सत्

(५) उक्त नित्यानुगत सत्ता जातिमेंभी प्रमाण नहीं है। "प्रत्यक्षस्य नित्यत्वादिघटित तत्रासामर्थ्यात्, अनुमानादथ्योऽप्यादिग्रहसापेक्ष्यत्वन साध्य प्रसिद्धिं विना असंभवात्। (गूढार्थतत्त्वालोक)

एतादृश एक प्रतीति, द्रव्य गुणकर्म इन तीन पदार्थ स्थलमे समवाय संबंध-विशिष्ट सत्ताको विषय करती है और सामान्य विशेष समवाय इन तीन पदार्थोमे सामानाधिकरण्य विशिष्ट सत्ताको विषय करती है इस प्रकार संबधकी भेद कल्पना समीचीन नही है। अतएव कहींपर साक्षात् संबंधसे कहींपर परम्परा संबंधसे ' सत् ' ऐसी प्रतीति उपपन्न नही होती क्योंकि विजातीय संबंधसे समानाकार प्रतीति अनुपपन्न है अन्यथा संबध-भेदही सिद्ध नही होगा। तात्पर्य यह है कि यदि विजातीय संबंधसे समानाकार प्रतीति होगी तो संबंध का विजातीयत्वही नष्ट हो जायगा क्योंकि प्रतीति द्वाराहि संबंधादि विषयका एकत्त्व अथवा अनेकत्त्व सिद्ध करना होगा। प्रकृतस्थलमे प्रतीति एकाकार होनेसे उसका विषय संबंधभी एकही होगा अर्थात् विजातीयत्व नही रहेगी। औरभी, परम्परा संबंधसे प्रत्यक्ष विशिष्ट बुद्धि होनेसे अतिप्रसंग होगा। तात्पर्य यह है कि प्रत्यक्षात्मक जो विशिष्ट-बुद्धि वह सर्वत्र साक्षात् संबंधसेही होती है। वह यदि परम्परा संबंधसेभी होगी तो निर्घट भूतलादिमे भी घटादि पदार्थका परम्परा संबंध रहनेसे वहांपरभी ' घटवत् भूतलं ' ऐसा प्रत्यक्ष हो जाता। अतएव परम्परा संबंधसे कोईभी पदार्थकी विशिष्ट बुद्धि प्रत्यक्षात्मक नही होती। प्रकृतस्थलमे सत् सत् ऐसी विशिष्ट-बुद्धि प्रत्यक्षात्मक होनेसे, इसमे परम्परा संबंध हो नही सकेगा। किंच विषयके एकरूपताका अभाव होनेसेभी यदि कदाचित् प्रतीति की एकरूपता अंगीकार करोगे, तो पूर्वपक्षीके मतमे कोईभी जातिकी सिद्धि नही होगी। अतएव सिद्ध हुआकि न्यायवैशेषिक सम्मत सत्ताजाति घटस्सन् पटस्सन् इत्यादि सद्द्रव्य-

वहार की साधक नहीं है। सत् की अनुगति सबधाशमें और प्रकाराशमेंभी विद्यमान है। विशेष्य, प्रकार और सबध तथा उससत्ताका सबध इन सबमें "सत्" ऐसी प्रतीति अनुगत है, परंतु सबधमें अथवा प्रकारमें सत्तारूपजाति रह नहीं सकेगी। इन उभयाशमें अनुगत व्यवहारकी उपपत्ति होनेके लिये जाति व्यतिरिक्त अपरसत् स्वीकार्य है जिसके साथ तादात्म्य प्राप्त होकर उसप्रकारसे वे व्यवहृत होते हैं। तात्पर्य यह कि, तार्किकमतमें अनुगत व्यवहारका अभाव प्रसग होगा। विशेषण और सम्बन्धकी अनुगति भिन्न अनुगतप्रतीति नहीं होती, तार्किकमतमें सबधकी अनुगति नहीं है। "घट सत्" इत्यादि अनुगत सत्प्रतीतिमें सबधके अनुगति नहीं है इसलिये अनुगत प्रतीति नहीं हो सकती। अनुगतप्रतीति उसी स्थलमें ही हो सकेगी जहापर विशेषण और विशेषण-विशेष्यका सबध अनुगत होवे। विशेषण अनुगत रहकर भी यदि विशेषणविशेष्यका सबध अननुगत हो तो अनुगतप्रतीति नहीं हो सकेगी। जैसा एकही गोत्वसामान्य समवायसबधसे और कालिक सबधसे विशेषण होनेपर प्रतीति एकरूप न होकर विभिन्न रूपही होती है। 'सन घटः' इत्यादि प्रतीतिमें प्रत्येक व्यक्तिभेदसे विभिन्न सद्रूपता स्वीकार करनेसे विशेषण अननुगत हो जाता। सुतरा अनुगत प्रतीति नहीं हो सकी। और इस सद्रूपताको सत्ता-जातिस्वरूप कहनेसे विशेषण सत्ताजाति अनुगत होती है सत्य, किंतु विशेषण-विशेष्यका सबध अननुगत रहा। कारण, "द्रव्य सत्, गुण सत, कर्म सत्" ऐसी प्रतीतिमें सत्ताजाति समवाय सबधसे विशेषण

होता है, और "जातिःसती, समवाय सन्" इत्यादि प्रतीतिमे सत्ताजाति समवायसंबंधसे विशेषण नहीं होती किंतु एकार्थसमवाय अर्थात् सामानाधिकरण्य संबंधसे विशेषण होगी। सुतरां विशेषण विशेष्यका संबंध अननुगत होनेके कारण प्रपंचान्तर्गत घटपटादि सत् सत् ऐमी अनुगतप्रतीतिकी विषय नहीं हो सका। संबंधकी अनुगति मिन्न अनुगत प्रतीति नहीं हो सकती। अनुगतरूपमे प्रतीतिमे विशेषण और सबंध उभयही अनुगत होना अवश्यक है, क्योंकि उभयही प्रतीतिका विषय है। किंतु सत्स्वरूप ब्रह्म सर्वप्रपञ्चानुगत होकर भासमान होनेसे जैसा विशेषणकी अनुगति, ऐसा संबंधकाभी अनुगति रक्षित होती है। सर्वत्र प्रपंचमे सद्रूप प्रतीतिमे एक सद्रूप ब्रह्मही सर्वत्र विशेषण रूपसे प्रतीत होता, और एक सत्तादात्म्यसंबंधेही प्रतीत होता है। एकमात्र सर्वानुगत सद्रूप ब्रह्मही प्रपंचान्तर्गत समस्त घटपटादिमे तादात्म्य संबंधसे संबद्ध होता है इसलिये सत् ब्रह्म घटपटादिमे विशेषणरूपसे भासमान होनेका योग्य है। (६)

(६) (क) ब्रह्मणस्तादात्म्येन विशेषणत्वोपगमे तूभयोरप्यनुगतव्यवहारोपपत्तेः ब्रह्मण एव तथात्वं। (अद्वैतसिद्धि चिद्रूपलेखीय)

(ख) सन्सदिति प्रतीत्यनुगत्यैव सत्सदितिव्यवहारानुगतिः। तत्रैव हि प्रतीतेरानुगत्यं यत्र विशेषणस्य विशेष्यविशेषणसंबंधस्य अनुगतिः, प्रपञ्चान्तर्गत-प्रत्येकवस्तुनः सत्स्वरूपताकल्पने विशेषणस्य अननुगमः, सत्ताजात्यङ्गीकारपक्षे विशेषणानुगमेऽपि संबंधस्य अननुगमः। तथाहि सदाकारप्रतीतिः यदा द्रव्ये गुणे कर्मणि वा तदा समवायेन सत्ताजातिः विशेषणम्, यदा द्रव्यत्वादौ सदाकारः प्रत्ययः तदा सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन सत्ताजातिः विशेषणम् इति

किंच सन्घटःसन्पटः इत्यादि प्रतीति घटपटादिव्यक्तिमे सत्ता व्यक्तिके अभेदमात्रको विषय करती है। इस प्रतीति द्वारा घटपटादि व्यक्तिमे सत्ता जातिका समवायित्व सिद्ध नही होता क्योंकि जो प्रतीति अभेदको विषय करती है उस प्रतीतिका निर्वाह भेदघटित समवाय संबंध द्वारा नही हो सकता। इसप्रकार द्रव्यस्सन् गुणस्सन् इत्यादि प्रतीतिद्वारा एक सद्वस्तुका द्रव्यादिक सर्व पदार्थके साथ अभिन्न होनेसे उन द्रव्य गुणादिक पदार्थोंमे परस्परमी वास्तविक भेद सिद्ध नहीं होता, काल्पित भेदमात्र होता है। उस द्रव्यादिका वास्तवभेद असिद्ध होनेसे उस द्रव्यगुणादिक धर्मीमे सत्ताजातिरूप धर्मकीभी कल्पना नही हो सकती (७)

वक्तव्यम्। तथाच विशेष्यविशेषणसंबन्धवैलक्षण्येऽपि प्रतीतेः अविलक्षणत्वम् अनुपपन्नमेव। सम्बन्धवैलक्षण्येन प्रतीतिवैलक्षण्यस्य आवश्यकत्वात् द्रव्यगुणकर्मसामान्यादिसाधारणसत्प्रतीतेः अनुगतायाः अनुपपत्तेः। वेदान्तिमते तु सद्रूपे ब्रह्मणि सर्वेषां द्रव्यादीनां तादात्म्येन अध्यस्ततया आध्यासिकसम्बन्धस्य च सर्वत्र अविशेषात् सर्वत्र द्रव्यादिषु सन् सन् इत्यनुगतप्रतीत्युपपत्तौ न किञ्चित् बाधकम्। (अद्वैतसिद्धि बालबोधिनीटीका—बांगलिपि)

(7) It is not itself a generic, but a transcendental notion. Wider than all, even the widest and highest genera, it is not itself a genus. A genus is determinable into its species by the addition of differences which lie outside the concept of the genus itself; being, as we have seen, is not in this way determinable into its modes.

(Coffey's 'Ontology' or The Theory of Being)

अतएव सद्रूप धर्ममें द्रव्यगुणादिक पदार्थोंकी अभिन्नत्वही अंगीकार करना उचित है। उल्लिखित विचारद्वारा सिद्ध हुआकि सत् भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप या अस्तित्वादिरूप धर्म नही है या जातिरूप नहीं है। अर्थात् सत्ता तद् तद्पदार्थभेदसे भिन्न नही है, पदार्थनिष्ठ अननुगत या अनुगत धर्मरूप भी नहीं है, वह अनुवर्तमान धर्मिस्वरूप एकमात्र है (८)

(ङ) सत्स्वरुप और ज्ञानस्वरूप अभिन्न है

जो चेतनस्वरूप वही पदार्थसंबंधसे प्रकाशक रूपसे प्रतिभात होता है। वह प्रकाश्य वस्तु या तदीय धर्मरूप नही है। ज्ञान सर्वावधि होनेसे किसीकाभी धर्म नही है, निराकार होनेसे (क्योंकि वह सर्वावधि अविषय) घटादि भिन्न भिन्न वस्तुस्वरूप नही है। अथच वस्तु संबंधसे वोही धर्मिरूपसे अनुभूत होता है। सत् भी वस्तुस्वरूप या उनका धर्म नही है अथच धर्मिरूपसे प्रतिभात है। सुतरां सत् और चेतन अभिन्न है। यदि सत् प्रकाशस्वरूपसे भिन्न हो तो वह अप्रकाशरूप होगा। अप्रकाश होनेसे वह सत् सत् इस प्रकार प्रकाशमान नहीं होगा सत्का अस्फुरण प्रसंग होगा। अनुगत धर्मिरूप होनेसे सत्‌चेतनका विषय या धर्मरूप नही है। सत्स्वरूप असिद्ध या परतः सिद्ध न होनेसे स्वतः सिद्ध है।

(८) सम्बन्धिभेदात् सत्तैव भिद्यमाना गवादिषु। जातिरित्युच्यतेतस्यां सर्वेशब्दा व्यवस्थिताः। तान् प्रातिपदिकार्थं धात्वर्थंच प्रचक्षते। सा नित्या सा महानात्मा तामाहुस्त्वतलादयः। शास्त्रेषु प्रक्रियाभेदैरविद्यैवोपवर्ण्यते। समारम्भस्तु भावानां अनादि ब्रह्मणश्चतम्।

(भर्तृहरिकारिका–महाभाष्यटीकाकार कय्यट कर्तृक उद्धृत)

ज्ञानभी ऐसाही है। ज्ञातृ-अन्तर और ज्ञानान्तरका अभाव होनेसे स्वप्रकाश की सत्यता माननी होगी। अतएव सत् और ज्ञान अभिन्न है। भिन्न होनेसे साधक-अभावसे असत् हो जाता। अतएव सत्‌चित् अद्वैतस्वरूप है।

तृतीय अध्याय

ज्ञेय स्वरूप विचार

(१) प्रतिपाद्य.—स्वप्रकाशज्ञान की दिक्से ज्ञेय के प्रति कल्पनानेत्रसे निरीक्षण करनेसे द्विविध पदार्थ प्रतिपन्न होगा, द्रष्टा और दृश्य। द्रष्टृचेतन ज्ञानात्मक और दृश्य पदार्थ ज्ञेयात्मक जड कहलाता है। जडका अवभासक होनेसे ज्ञप्ति ही ज्ञातृ वा द्रष्टृरूपसे उपचरित होता है। अत्र यह प्रतिपादन किया जायगा कि ज्ञेयात्मक जडप्रपंच स्वप्रकाश ज्ञानात्मक द्रष्टृचेतनसे भिन्न या अभिन्न या भिन्नाभिन्नरूपसे निर्वचन नहीं किया जा सकता।

(२) ज्ञानसे ज्ञेय पदार्थ भिन्नरूपसे निर्वचनीय नहीं है:—

ज्ञेयपदार्थ, ज्ञानसे स्वतंत्र रूपसे गृहीत या प्रतीत न होनेसे उसको ज्ञान–असम्बद्ध या स्वतंत्र–भिन्न कहा नहीं जा सकता जिनके स्वरूप परस्पर असंसृष्ट है और जो पदार्थ असम्बद्ध है उनका द्रष्टृदृश्यभाव कैसे होगा? ज्ञेय पदार्थ, ज्ञानस्वरूपसे सर्वथा भिन्न होनेसे ज्ञातृज्ञेयभावकी अप्रसिद्धि होनेके कारण जगतकीही अप्रसिद्धि हो जायगी। अत स्वप्रकाश ज्ञानसे ज्ञेयपदार्थ भिन्न रूपसे निर्वचन नहीं हो सकता। ज्ञान और ज्ञेयका स्वरूपभेद है, पर ज्ञेय की स्वत.सत्तास्फूर्ति संभव न होनेसे ज्ञानसे ज्ञेयका भेद सिद्ध नहीं होता। यद्यपि द्रष्टृचेतन और दृश्यका भेद प्रसिद्ध है (इसी हेतुसेही व्यवहार होता है) तथापि उस भेदका मूल दृष्ट नहीं है। दो अदृष्टोंका परस्पर भेद किंवा एक दृष्ट और अपरअदृष्ट इनका भेद दृष्ट नहीं हो सकता। क्योंकि भेद दृष्टिके लिये धर्मि (जिन

आश्रयमें भेद या अभाव रहता है) और प्रतियोगी (जिसका भेद या अभाव है) इसके ज्ञान आवश्यक है। जो अदृष्ट है वह कभीभी धर्मी या प्रतियोगी नहीं हो सकता। यदि अदृष्ट पदार्थ धर्मी होगा तो सब पदार्थोंके भेदप्रतीति हो जायगी और यदि अदृष्ट पदार्थ प्रतीयोगी हो तो सर्वतः भेदप्रतीति हो जायगी। ऐसा होनेसे संशय विपर्ययकाभी अनुदय होगा। अर्थात् यह वस्तु इस वस्तुकी अपेक्षा भिन्न है या नहीं इत्याकार संशय किंवा भेदाभाव—निश्चयभी नहीं होगा। अतः दो दृष्ट पदार्थोंकी परस्पर अपेक्षासे भेददृष्टि संभव है; दृष्ट और अदृष्ट इन दोनोंकी या दो अदृष्ट पदार्थोंकी भेददृष्टि संभव नहीं है। प्रकृतस्थलमें दृक् अदृष्ट है और दृश्य दृष्ट है। इसलिये दृक्‌दृश्यके भेदप्रसिद्धिका कोई मूल पाया नहीं जाता। इसी हेतुसे दृक् और दृश्यमें भेददृष्टिका संभव नहीं है क्योंकि दृशि (स्वप्रकाश साक्षिचेतन) अदृश्य (अविषय) है (१)

दृक् और दृश्यका अन्योन्याभाव अवगत होना शक्य नहीं है अभाव प्रतियोगिसापेक्ष होता (किसका अभाव किसमें है ऐसा ज्ञान होनेसे अभावका ज्ञान होता है) और अभाव दृश्य होनेसे उसको द्रष्टाकी आवश्यकता है। प्रकृतस्थलमें दृक् स्वयं दृशिस्वरूप है। इस प्रकार स्वयं-दृष्टिके (साक्षिचेतनको) प्रतियोगिसापेक्षता और दृश्यता नहीं है, होगी तो उसके स्वयंदृष्टत्वकी हानी होगी। जो स्वसत्तामें प्रकाशव्यभिचारी है उसकी अदृशिता निश्चय की जा सकती है परंतु दृशि सदादृष्ट (स्वप्रकाश) होनेसे

(१) अविषयत्वात् दृशो न भेदाभावधर्मिता नापि प्रतियोगिता।
(आनन्दानुभवकृत इष्टसिद्धिविवरण—अमुद्रित)

उसका स्वमत्तामे प्रकाश–व्यभिचार नही है। स्वयदृष्टिको कभीभी अदृष्टि सम्भव नही है क्योंकी उसकी स्वरूपभूत दृष्टि अन्यानपेक्ष है। वह यदि अन्यापेक्ष होगा तो (अन्यापेक्षत्व होनेसे)अनित्यत्व हो जावेगा।

उक्त रीतिसे दृक्स्वभावके पर्यालोचनद्वारा भेद और अभावके सम्बन्ध उसमे निरास करके अब भेद और अभाव इन दोनोंके स्वरूपके पर्यालोचन द्वारा उनकेभी दृक्–धर्मत्व निराकृत करते है। यहापर दो विकल्प उत्थापित कीये जाते हैं, भेद और अभाव वे दृश्य है या अदृश्य है? यदि दृश्य हो तो दृश्यान्तरकी समान वे दृक्धर्म नही होंगे। वे यदि अदृश्य हों तो उनको अप्रकाश या स्वप्रकाश कहना होगा। अप्रकाश होनेसे उनकी सिद्धि नही होगी। यदि वे स्वयप्रकाश हो तो दृशिसे उनका भेदही नही रहेगा (२) इस पक्षमे और भी दोष है –– स्वयप्रकाश होनेसे वे सदाभान होगा। सदाभान होनेसे उनकी सिद्धि प्रतियोगि–अनपेक्ष होगी। प्रतियोगि–अनपेक्ष–सिद्धि होनेसे भेदकी और अभावकी हानी होगा। भेद और अभाव ये दोनो नियमसे प्रतियोगि–सापेक्ष है। अत इससे सिद्ध होता है कि वे (भेद और अभाव) दृशिके धर्म नही है। दृशिका स्वरूपभी वे नही है। स्वयंप्रकाश पदार्थ

(२) स्वयमानत्व तयोर्दृश्यत्व सहैकज्ञानागम्यत्वान्न दृश्यधर्मत्व यथा दृश स्वयमानाया नदृश्यधर्मत्व तद्वत्। तथा स्वयमानत्वादेव दृग्वत् दृकप्रति योगितया तयोर्भेदो न सिध्येत् प्रत्यक्षाप्रत्यक्षभेदस्याप्रत्यक्षत्वात् तथा परस्पर मपि भेदो न सिध्येत् स्वयमानत्वाविशेषात् (ज्ञानोत्तमकृत इष्टसिद्धिविवरण अमुद्रित)

प्रतीयोगिकी अपेक्षा न करतेही सिद्ध होता है। अतः उसका भेद-पणा और अभावपणा नहीं हो सकता। सुतराम् उसरूपसे (स्वप्रकाशरूपसे) भेद या अभाव सिद्ध नहीं हो सकते। यदि एकही दृशिके भेद और अभाव ये दो रूप हों तो कहना होगा की दृक् उन दोनोसे अभिन्न अथवा वे दो दृशिसे अभिन्न है। प्रथम पक्षमे दृशिका एकत्व नहीं रहेगा क्योंकि वह दोनोसे अभिन्न है। अंतिम पक्षमे उन दोनोका परस्पर भेद नहीं रहेगा क्योंकि वे एकही जो दृशि उससे अभिन्न है। तथा दृक् – अभिन्न होनेसे उन दोनोको स्वप्रमत्व कहना होगा। अतः पूर्वोक्तदोष पुन. उपस्थित हुवा अर्थात् प्रतियोगि –अनपेक्ष उनकी सिद्धि होनेसे भेद-पणा और अभावपणा की हानी हो गयी। अतः भेद और अभाव वे दोनो दृशिरूप है वह पक्षभी सिद्ध नहीं होता। उल्लिखित विचारद्वारा यह सिद्धान्त प्राप्त हुआ की दृक् – प्रतियोगिक (दृक् जिसका प्रतियोगी एतादृश) भेद और अभाव दृश्यमे नहीं रह सकते।

द्रष्टा और दृश्यका परस्पर भेद और अभावविषयक कोई प्रमाण भी नहीं है। चक्षु या मन द्वारा वे अवगत नहीं हो सकते क्योंकि दृशिस्वरूप चक्षु और मन इन दोनोको अगोचर है। यदि द्रष्टा प्रमाणसे ज्ञेय होता तो उसका भी अपर द्रष्टा होना चाहिये, द्वितीयका तृतीय तृतीयका चतुर्थ इसप्रकार अनवस्था होगी। अतः द्रष्टा अगोचर सिद्ध हुआ। अगोचरसे भेद या अगोचरका अभाव गोचरमे ज्ञात होना शक्य नहीं। यदि द्रष्टा गोचर होगा ते घटादिके समान अदृक् होगा। जोभी घटज्ञान पटज्ञान इत्यादि

विशिष्टज्ञान कदाचित् विषय हो तोभी केवलज्ञान कभीभी विषय नही होता। दृक्-प्रतियोगिक भेद और अभाव इन दोनो-विषयोंमें दृक् ही प्रमाण होगा ऐसाभी नही कह सकते। दृक्के ग्रहणविना तत्प्रतियोगिक भेद और अभावके ग्रहण नहीं हो सकते। परंतु दृक्का ग्रहण संभवही नहीं हो सकता क्योंकि आपनही आपनेको गोचर करे यद कर्मकर्तृविरोध है। दृक् स्वतः स्फुरित होनेसे स्वप्रतियोगिक भेद और अभाव इन दोनोका प्रमाण स्वतःही होना असंभव है। प्रतियोगी तथा प्रतियोगियुक्त भेदज्ञान और अभावज्ञान आपने आपही होता है ऐसा कहनेसे यह प्रष्टव्य है कि युगपत् संपूर्ण रूपसे अथवा अंशरूपसे? आद्यपक्ष संगत नहीं क्योंकि द्रष्टा सावधिरूपसे और उस अवधिके प्रमाणरूपसे युगपत संपूर्ण वर्तमान होनेको समर्थ नहीं है। प्रतियोगिरूपसे रहनेवाला तद्रूपमेंहि समाप्त हो जानेसे उसका प्रमाण पुनः नहीं होगा। द्वितीय पक्षभी असंगत है क्योंकि स्वप्रकाशज्ञान सांश या सावयव नही है। स्वप्रकाश ज्ञानको सावयव (अवयव सहित) कहें तो उसके अवयव और अवयवी ये दोनो स्वप्रकाश होंगे अथवा उनमेंसे कोई एक स्वप्रकाश होगा। यह दोनो पक्ष असमंजस है। उभय स्वप्रकाश होनेसे वे परस्पर अविषय होंगे। जो स्वतः प्रकाश नही किन्तु अपरद्वारा प्रकाशित है वोही विषय कहलाता है। अतः स्वप्रकाश अवयव और स्वप्रकाश अवयवी परस्परके विषय न होनेसे अवयव अवयवीको नहीं जानेंगे, और अवयवीको अवयव प्रतीत नहीं होंगे। इस प्रकार अवयव और अवयवी प्रतीत न होनेसे उसको सावयव नही कह सकते। यदि कहा जावेकि अवयव और *अवयवी उभय स्वप्रकाश नहीं किन्तु एक स्वप्रकाश है और अपर*

अस्वप्रकाश है तो उन दोनोका अशांशीभाव (अवयव अवयविभाव) नही होगा। अस्वप्रकाशरूप घट प्रकाशरूप ज्ञानका अवयव नही होता। अत स्वप्रकाशज्ञान अवयवसहित नहीं है। स्वप्रकाशज्ञान अविषय होनेमे वह निरवयव, निरंश, और निराकार है। जो पदार्थ सावयव और साकार होता है वोही ज्ञानका विषय होता है। अधिक देशके ज्ञानविना पदार्थोका सावयवत्व निद्धारित नही होता। सीमाके निदेशविना पदार्थका सावयवत्व ज्ञात नही होता। सीमाके निर्देश करनेके लिये उसका अधिक देश विषयीकृत होना आवश्यक है। अत जो अविषय है वह सावयव नहीं हो सकता क्योंकि उसका अधिक देश विषयीकृत नही होता। स्फुरणरूप होनेसे ज्ञान अननुभाव्य है। अत, ज्ञान सावयव नही किन्तु निरवयव है। ज्ञान स्वरूपके अधिक देशके ज्ञानविना उसका सावयवत्व सिद्ध नही होगा। अत ज्ञानस्वरूपकी सावयवत्व सिद्धिके पहिले ज्ञान विद्यमान है। इसलिये ज्ञेय पदार्थके अधिक देशका प्रकाश ज्ञानद्वारा होते हुयेभी ज्ञानस्वरूपका अधिक देश उपपन्न नहीं है। सुतराम् ज्ञेय पदार्थ के समान ज्ञानका सीमा संभव नही है। अत वह सावयव नहीं
(३) यदि ज्ञान सीमाबद्ध हो तो वह अपर पदार्थद्वारा सीमायुक्त

(3) It is only possible to be aware of a limit to anything by knowing what is beyond the limit No one could be aware of the end of a straight line un less he were aware of the empty space beyond the end Hence if knowledge itself has any absolute li mit we could no be aware of the fact for we could only know the limit by being aware of what is be yond the limit and that would mean that knowled

होनेसे उस सीमाका ज्ञान नही हो सकता। सीमाको जाननेके लियेही सीमारहित सम्नद्ध अथच तदतीत का ज्ञान होना अवश्यक है। ज्ञान तदतीत हुयेविना ज्ञानकी सीमा कसी अवगत होगी? अतः ज्ञानकी सीमा जाननेके पहिलेही ज्ञान तदतीत है, अत ज्ञान सिद्ध है, इसालये ज्ञानकी सीमा प्रसिद्ध नही हो सक्ती। परिच्छिन्नत्व प्रकाशित होताह इससेही प्रतिपन्न होता है कि परिच्छिन्नत्व प्रकाशगत नही है(४) यदि दृशि सान्त होगा तो उसकी अनित्यत्वप्राप्ति और अदृक्त्व प्रसग होगा। सान्तत्व अनित्यत्व और अदृक्त्व ये नियत सहचररुपमे प्रसिद्ध ह अत सिद्ध हुआ कि दृशिस्वरुप एकाशसे भेदका या अभावका प्रतियोगी ह और अपराशसे उन दोनोको जानता है ऐसा नही हो सक्ता। भेद और अभावका दृक्प्रमाणत्व (दृक् द्वारा ज्ञातत्व) सभव नहीं है। भेद और अभाव यदि दृक्रुप प्रमाणद्वारा अवगत है तो वे दृक्प्रतियोगिक नही होंगे किन्तु अप्रतियोगिक या अन्यप्रतियोगिक होगे। जो जिसमे प्रमाण होता है वह तत्प्रतियोगिक नही होता, किन्तु अन्यप्रतियोगिक होता है। इस रीतिसे यदि भेदविषयमे दृक्रूप प्रमाण हो तो वह दृक्प्रतियोगिक नही हो सकता।

---

ge has already passed beyond its supposed limit or in other words, the limit is no limit

(Stace's The Philosophy of Hegel)

(4) It is flagrant self contradiction that the finite should know its own finitude

(Bradley's "Ethical Studies")

दृशिका अभाव हृदयमें है यह अवगत होनाभी शक्य नहीं। उपलब्धि योग्य पदार्थोंके अनुपलब्धिमें उनका अभावज्ञान होता है। परंतु दृशिका अभावज्ञान सम्भव नहीं है क्योंकि वह उपलब्धिस्वरूप है। दृशिसे अन्य उपलब्धि नहीं है जिसके अभावसे (अनुपलब्धिसे) अभाव ज्ञात होगा। अतः दृशिका अभावज्ञान कहींपरभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसका (अभावज्ञानका) हेतु नहीं है, अर्थात् दृशिके अनुपलब्धिका अभाव होनेसे दृक्-प्रतियोगिक अभावज्ञान सम्भव नहीं है। यहांपर अभावज्ञानके कारणरूप प्रतियोगि-स्मृति आदि(५)नहीं हैं, क्योंकि दृशि अग्राह्य है। प्रमाणद्वारा दृक्-प्रतियोगिक अभावका ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि दृशि अमेय (प्रमाणका अविषय) है। "यह घट पट नहीं" इस प्रकार प्रतियोगिका ग्रहण इस अभावज्ञानका हेतु है। यदि धर्मी और प्रतियोगिद्वारा अविशेषित अभावज्ञान होता तो अविशेषित होनेसे सर्वत्रही सर्वका अभावज्ञान होगा किंवा किसीकाभी कहीं-परभी अभावज्ञान नहीं होगा। दृशिस्वरूप अमेय होनेसे वह प्रतियोगी नहीं है। प्रतियोगी आदि न रहनेसे दृक्-प्रतियोगिक

---

(५) भूतलमें घटाभावके ज्ञानस्थलमें घटका (अभावके प्रतियोगीका) स्मरण अपेक्षित है। जिस आश्रयमें अभाव रहता है उसको ग्रहण करके और जिसका अभावज्ञान है उसका स्मरण करके यह अभावज्ञान मानस- (मतान्तरमें प्रत्यक्ष) होता है। 'गृहीत्वा वस्तुसद्भावं स्मृत्वा च प्रतियोगिनं, मानसं नास्तिताज्ञानं जायतेऽक्षानपेक्षया।

(मीमांसावार्तिक)

अभाव ज्ञेय नहीं होगा। प्रमेय पदार्थही प्रतियोगिरूपसे अभावरूप प्रमाणमें स्फुरित होता है। जो अनुभव नित्य- है उसका नाश संभव न होनेसे और वह सदा प्रकाशरूप होनेसे उसकी स्मृति नहीं हो सकती। अतएव प्रमाणका (अभावप्रमाणका) प्रतियोगिरूपसे वह स्मृतिगोचर नहीं हो सकता। संदिग्ध भावकीही बुभुत्सा होनेसे उसके अभावज्ञानका उदय होता है। परंतु दृशि अप्रमेय (स्वयंप्रभ) और असंदिग्धभावरूप होनेसे वह अभावप्रमाणमें स्फुरित और अभावज्ञानमें उदित होना संभव नहीं है। अतः दृक्-अभाव अप्रामाणिक है। प्रामाणिक अभाव नहीं होता तथापि अप्रमेय अभाव होगा ऐसा कोई कहे तो यह कहनाभी उचित नहीं है। यदि अप्रमेय अस्वयंप्रभ हो तो उसकी सिद्धिही नहीं होगा। पदार्थोंकी सिद्धि त्रिविधरूपसे होती है, प्रमाणद्वारा अथवा दृशिरूप अनुभवद्वारा अथवा स्वतःसिद्धि। यदि दृशिका अभाव स्वतःसिद्ध माना जावे तो उसके प्रतियोगी आदि न रहनेसे दृशिकाही अभाव नहीं हैं। दृक्का अभावज्ञान दृक्ही है ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि सप्रतियोगिक अभावका स्वप्रकाशज्ञानत्व संभव नहीं है। संभव होनेसे अभावत्वकी व्याहति होगी। अतः यह अप्रमेय अभाव स्वतःसिद्ध न होनेसे अवशेष (प्रकारान्तरके अभावसे) उसको दृशिसिद्धत्व कहना होगा। परंतु यहभी सम्भव नहीं है क्योंकि स्वअभावका साधक स्व नहीं हो सकता। अतः उक्त अभाव अस्वयंप्रभ अथच प्रमाणागोचर होनेसे उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। सुतरां दृश्यमें दृक्-अभाव है, इस विषयमें प्रमाण नहीं है। दृक्दृश्यका इतरेतराभाव न हो तथापि उनका भेद होगा ऐसा

वचनभी संगत नहीं। इतरेतराभावविना भेदका संभव नहीं परतु इतरेतराभाव दृक्-दृश्यमे नहीं है। अतः प्रामाणिक भेद और अभाव इन दोनोंका अभाव होनेसे दृशिका अनन्तपना सिद्ध हुआ अर्थात् दृशिका भेद और अभाव न होनेसे उसका देशतः कालतः और वस्तुतः अन्तरहितत्व प्रतिपन्न हुआ। उक्त विचारद्वारा यह सिद्धांत प्राप्त हुआ कि दृशिरूपचेतन अनन्त होनेसे जडपदार्थ उससे भिन्नरूपसे निर्वचनयोग्य नहीं है।

(३) जडप्रपंच चेतनाभिन्नरूपसे निर्वचनीय नहीं है:—चेतनाभिन्नरूपसेभी जडका निर्वचन सम्भव नहीं है। चेतन परानपेक्षसिद्ध, जड परतःसिद्ध, अतः इनमे अभेद सम्भव नहीं है। जड चेतनाभिन्न होनेसे जडमे चेतनका अन्तर्भाव होगा अथवा चेतनमे जडका अन्तर्भाव होगा, इससे अतिरिक्त कोई प्रकार नहीं है। अर्थात् दृक्-दृश्यका अभेद होनेसे दृश्यका दृक्मात्रत्व होगा किंवा दृशिका दृश्यमात्रत्व होगा। परंतु यह सम्भव नहीं है। यदि दृश्य, दृशि-अभिन्न है तो दृक्ही है वह दृश्य कैसे होगा? यदि दृक् दृश्य अभिन्न होगा तो वह दृश्यही होगा, दृक् नहीं। इसरीतिसे दृश्य अदृश्य होगा। अतः दृक्-दृश्यका अभेद असंभव है,

शंका—'शुक्लपट' इसस्थलमे शुक्ल और पटका जैसा विशेष्य-विशेषणभाव होता है ऐसे ही "घटदृष्ट" स्थलमे विशेष्यविशेषण-भाव होनेसे इस स्थलमेभी अवश्य धर्म धर्मित्व कहना होगा। यह धर्म-धर्मिभाव अत्यन्त भेदस्थलमे नहीं हो सकता। अतः दृक्-दृश्यका अभेद मानना होगा।

उत्तर—दृक् और दृश्यका धर्मधर्मिज्ञान नहीं हो सकता है। घट और रूप जैसा एकज्ञानके गम्य है वैसेही दृक् और दृश्य एकज्ञान गम्य नहीं है। जिनकी एकज्ञानगम्यता होती है उनका धर्मधर्मिभाव दृष्ट होता है। यदि एकज्ञानागम्य होनेसे भी धर्मधर्मिभाव माना जावे तो अतिप्रसंग दोष होगा, हिमवत् और विन्ध्यकाभी धर्म-धर्मिभाव होने लगेगा क्योंकि एकज्ञानागम्यत्व सम है। एक जो दृशि उसका दृश्यधर्मत्वरूपसे दृश्यत्व और दृश्यका दृक्त्व यह एकही कालमें संपूर्ण रूपसे नहीं हो सकता। दृक् और दृश्यका यदि धर्मधर्मिभाव हो तो एकज्ञानगम्यत्वभी अवश्यही होगा। अतः एक जो दृशि वह संपूर्ण रूपसे दृश्यत्व (दृश्यके धर्मरूपसे अथवा दृश्यके धर्मिरूपसे) तथा अपर दृक् न रहनेसे तदानीं ही उसका (धर्मधर्मिभावका वा दृश्यका) दृक्त्व हो जावेगा। परंतु यह अयुक्त है क्योंकि युगपत् संपूर्णरूपसे दृश्यत्व और दृक्त्व परस्पर विरुद्ध है। यदि कहो कि, एक अंशसेही दृशिका दृश्यधर्मता अथवा दृश्यधर्मिता होनेसे दृश्यत्व है और अंशान्तरसे दृक्त्व है, तो यह समीचीन नहीं; क्योंकि दृशि अनंश है तथा उस दृशिका जो दृश्यांश वह अदृक् हो जावेगा। दृक्का दृश्यरूपसे (दृश्यका धर्मरूप अथवा दृश्यका धर्मिरूपसे) प्रविष्ट भाग दृश्य होनेसेही अदृक् होगा। अदृक् होनेसे दृक्-दृश्यके धर्मधर्मित्व न होंगे किन्तु दृश्य-दृश्यकेही धर्मधर्मित्व होंगे। एक दृशिका दृक्त्व और दृश्यत्व ये दो युगपत् या क्रमिक या अंशद्वारा नहीं हो सकते। औरभी यह विचारणीय है कि—दृश्य

और दृशिका जो धर्मधर्मिभाव वह स्वप्रकाश है या दृश्य है ? यदि स्वप्रकाश होगा तो दृक्-अभिन्न होगा, वह धर्मधर्मिभावही नहीं होगा। और दृक्-दृश्यमे जो धर्म धर्मिभाव है वे दृक् और दृश्य इन दोनोके धर्म हैं ऐसा कहना होगा। परंतु यह सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि धर्मधर्मिभाव स्वयंप्रकाश होनेसे उसका (वास्तव) संबंध दृश्यके साथ नहीं होगा। यदि धर्म-धर्मिभाव दृश्य होगा तो दृशिके साथ उसका संबंध नहीं होगा। अर्थात् वह दृक्का धर्म नहीं होगा, क्योंकि दृश्यका स्वयं-प्रकाश दृक्के साथ संबंध नहीं होगा। ज्ञेय पदार्थ यदि तत्वतः चिद्धर्म होगा तो चेतनकाभी वेद्यत्व आ जायगा। यदि दृक्के साथ *दृश्यका धर्म-धर्मिभाव मिथ्या संबंधसे है तो यह संबंधप्रयुक्त* धर्मधर्मिभावभी मिथ्या होगा। अतः द्रष्टा-दृश्यके धर्मधर्मिभाव संगत नहीं है। सुतरां दृक्-दृश्यका, जड- चेतनका अभेद नहीं। दृक्-दृश्यका अभेद होनेसे सर्व व्यवहारका लोप हो जायगा। अतः प्रतिपन्न हुआ कि जडप्रपंच चेतनाभिन्नरूपसे निर्वचनीय नहीं है (६)

---

(६) विरुद्ध धर्माध्यास और कारणभेदही भेद और भेदहेतु होता है। अतएव दृक् और दृश्यका सांव्यवहारिक भेदही होता, अभेद पुनः सांव्यवहारिकभी संभव नहीं है।

(४) जड प्रपंच चेतनसे भिन्नाभिन्न रूपसे निर्वचनीय नही है :—

चेतनसे भिन्नाभिन्न इन उभयरूपसेभी जडपदार्थ निर्वचनीय नही है। एकका एकत्र एकरूपसे भेद और उसका अभाव (अभेद) विरुद्ध है। जो एक वह नाना ऐसी प्रमा नही होता। जो अनेक वह एक ऐसी प्रतीतिभी नही होती। एकही प्रमाणका युगपत् विधि और निषेधरूप व्यापारद्वय संभव नही। विधि और निषेध इन दोनोको एककालमे प्रमाकरना प्रमाणका स्वभाव नही होता। भेदज्ञानका विषय अभेद नही और अभेदज्ञानका विषय भेद नही। अभेदज्ञानका विषय भेदज्ञानके विषयसे अन्य होनेसे दो भिन्न पदार्थोंका अभेद सिद्ध नही होता। अतः एकत्र भेदाभेद संभव नही है। दृश्य कभीभी द्रष्टारूप नही है, और दृशिभी दृश्यरूप नही है। तृतीयरूप नहा हो सकता। दृशिके रूपद्वय नही हो सकते। दृश्यकाभी ऐसा है। सुतरां दृशिके या दृश्यके रूपद्वयका अभाव होनेसे उन दोनोका परस्पर भेदाभेद नही हो सकता। अतः चेतनसे भिन्नाभिन्न उभयरूपसे जडका निर्वचन नही होता।

चेतन और जडका भेदाभेद माननेसे कहा जा सकता है कि एकांशमे भेद और अपर अंशमे अभेद है, परंतु यह हो नही सकता, क्योंकि चेतन अनंश है। अतएव एकांशमे भेद न होनेसे संपूर्णरूपसे अभेद और संपूर्णरूपसे भेद कहना होगा। परंतु यह संगत नही है। जो चेतनसे संपूर्णरूपस अभिन्न है वह यदि चेतनसे भिन्न होगा तो चेतनभी चेतनसे संपूर्णरूपसे

अभिन्न होनेसे वहभी अपनेसे भिन्न होगा, परंतु यह समीचीन नहीं है। अपनेही अपनेसे भिन्न नहीं होता क्योंकि एकही निरंशकी अवधिस्वरूपता और अवधिमत्स्वरूपता नहीं हो सकती (भेदमें प्रतियोगी अवधि होता है और अनुयोगी अवधिमान् होता है)। औरभी जिसरूपसे अभेद उसरूपमें यदि भेद होगा तो भेदबुद्धि और अभेदबुद्धि एकविषयक होगी। अर्थात उसका भेदस्वरूपता नहीं होगी। तात्पर्य यह है कि भेदबुद्धिका और अभेदबुद्धिका विषय पृथक पृथक होना आवश्यक है। प्रकृतस्थलमें ऐसा न होनेसे (अर्थात् भेदको योग्यता न रहनेसे) जो अभेद वही भेद और जो भेद वहीं अभेद ऐसा होगा। अतएव अभेदसे अतिरिक्त भेद सिद्ध नहीं होगा। अथच ऐसा होता है। अतएव चेतनके और जडका भेदाभेद नहीं है। जो चेतनव्यतिरिक्त है उसका पुनः परमार्थतः तदभाव संभव नहीं है। सुतरां चेतनसे भिन्नभिन्न उभयरूपसे जडका निर्वचन नहीं हो सकता।

जडप्रपंच चेतनसे भिन्न या अभिन्न या भिन्नाभिन्नरूपसे निर्वचनीय नहीं होनेसे वह अनिर्वचनीय है। अद्वैतवेदान्तशास्त्रमें अनिर्वचनीयका अर्थ वचनका अयोग्य (अवाच्य) ऐसा नहीं है किन्तु दुर्निरूप्य है। उस वचनद्वारा वक्ताका असामर्थ्य प्रकट किया जाता है ऐसाभी नहीं है, किन्तु उसकेद्वारा ज्ञेयप्रपंचका स्वरूप वर्णित होता है (७) युक्ति-

(७) नहिप्रमातृणामसामर्थ्यादनिर्वचनमपितु विषयस्वाभाव्यात (अद्वैतसिद्धिगुरुचन्द्रिका—अमुद्रित)

द्वारा निश्चय करके भिन्न या अभिन्न या भिन्नाभिन्नत्व प्रकारसे निरूपण-असहिष्णु होनेसे वह अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीयताभेमी अनिर्वचनीयताही वेदान्तियोंको सम्मत है।

(५) प्रकारान्तरसे ज्ञेयपदार्थका अनिर्वचनीयत्व प्रदर्शन—ज्ञानस्वरूपकी दृष्टिसे विचार करके ज्ञेयका अनिर्वचनीयत्व सिद्ध हुआ। अब सत्स्वरूपकी दिशासे विचार किया जाता है। सत्स्वरूपका विचारद्वारा निरूपित हुआ कि सन्घटः सन्पटः इत्यादि सर्वत्र अनुगत सद्बुद्धि कोई अननुगत पदार्थ जनित नहीं है। अनुगत कोई धर्मद्वारा भी उक्त सत्तादात्म्य सूपपन्न नहीं है। 'मृद्घट' इत्यादि स्थलके समान उक्त प्रतीति अनुगत धर्मिमूलक है। अतएव सर्व प्रपंचके धर्मिरूपसे सत्स्वरूप प्रतिपन्न होता है। सत्स्वरूप-धर्मीका धर्मरूपसेप्रतिभात प्रपंच सत् नहीं है क्योंकि वह धर्म प्रकाश्यरूपसे प्रतीत होताहै। वह सत् नहीं है क्योंकि एकमात्र प्रकाशही सत् है। जो सिद्ध है अथच अपरद्वारा प्रकाशित नहीं वह स्वतःसिद्ध है। जिसका अस्तित्व स्वतःही सिद्ध है वही सत् है। ज्ञेय प्रपंचका अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है क्योंकि वह ज्ञानकी अपेक्षा करता है। ज्ञानका सापेक्ष न होनेसे उसका ज्ञेयत्वही प्रसिद्ध नहीं होता है। जिसका अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है उसको सत् कहना संगत नहीहै क्योंकि सत् स्वतःप्रकाश (स्वतंत्ररूप) है। अतएव जडप्रपंच सत्रूप नहीं है। वह असत्‌भी नहीं है। इंद्रियका सन्निकर्ष या ज्ञानका तादात्म्य असत्के साथ न हो सकनेसे जडप्रपच असत् नहीं है। यद्यपि संपूर्ण जडप्रपंच किसीकेभी ज्ञानका विषयभूत नहीं है,

तथापि कल्पनाबलसे स्वप्रकाशज्ञानमे अवस्थित होकर उसके साथ तादात्म्यप्राप्त ज्ञेयके प्रति निरीक्षणपूर्वक सर्व जडपदार्थ-विषयमे उक्तरूपसे कहा जाता है। ऐसे तादात्म्यविना पदार्थोंको सिद्धि संभव नही क्योंकि वे स्वतः सिद्ध नही है। ज्ञेय विश्वप्रपंच सदसत् उभय रूपसेभी निर्वचनीय नहीं है । युगपत् परस्पर विरूद्ध सत्वासत्व एक वस्तुमे अवस्थित नही हो सकता । एक समयमे एक पदार्थमे अस्तित्व और नास्तित्व रह नहीं सकता इसलिये अस्तित्व और नास्तित्व परस्पर विरुद्ध धर्म है। विरूद्धका एकत्र समावेश कर्तृ-भेदसे, देशभेदसे, अवस्थाभेदसे, कालभेदसे, प्रतियोगिभेदसे (यथा त्र्यणुक द्व्यणुक अपेक्षा महत् है, चतुरणुक अपेक्षा अल्प है) हो सके परंतु उपाधिरहितरूपसे स्वभावतःहि विरूद्धका एकत्र समावेश संभव नही है । अन्यतरके उपमर्दनसे अन्यतरका बुद्धिमे आरोहित होनेसे युगपत् एक वस्तुका सत्वासत्वका समुच्चय अवगत नही हो सकता । अतएव प्रमाणाभावसे युगपत् परस्पर विरुद्ध सत्वासत्व एक वस्तुमे अवस्थित नहीं हो सकते। सुतरां प्रतिपन्न हुआ कि चेतन और जड इन द्विविध पदार्थोंमे चेतन स्वतः सिद्ध सत् है, जड पदार्थ अनिर्वचनीय है । सत् या असत्रूपसे विचारासह होकर सत्वासत्व उभयरूपसेभी विचारासह होनेसे जडप्रपंच अनिर्वचनीय है । सर्वथा वचनके अगोचरको अनिर्वचनीय नही कहते किन्तु पारमार्थिक सत्स्वरूप चेतनसे विलक्षण तथा सर्वथा सत्तास्फूर्तिशून्य शशशृंगादि असतसे विलक्षण अनिर्वचनीय शब्दका पारिभाषिक

अर्थ है(८) सदसत् विलक्षणत्वही दुर्निरूपत्व या अनिर्वचनीयत्व है, पदार्थका स्वरूपासत्व नहीं। ऐसा होनेसे स्वाभिमेत पदार्थका स्वरूप निरूपणभी वृथा होता है।

(६) **अद्वैतसिद्धांत**—उल्लिखित विचारद्वारा अशेष निर्वचनीय पक्षके खंडनपुरस्सर ज्ञेयप्रपंचका अनिर्वचनीयत्व प्रतिष्ठित हुआ। अतएव जगत्‌विषयमे अद्वैतवैदान्तिक सिद्धान्त प्राप्त हुआकि जगत ज्ञानज्ञेयरूप है, उनमे ज्ञान स्वप्रकाशस्वरूप है और ज्ञेयप्रपंच अनिर्वचनीय है।

---

(८) अथवा सदन्यत्वमनिर्वचनीयत्वम्। न चाऽसत्यतिव्याप्तिः। अन्यत्वादि धर्मयोग्याऽसद्रूपाङ्गीकारे तस्य प्रपञ्चाऽन्तःपातित्वाद् वाह्याऽभ्युपेताऽसतो निस्वरूपत्वात्। किंचाऽसन्नाम किंचिदस्ति चेदसत्वव्याघातः नास्ति चेत्कुतोऽतिव्याप्तिः

(वेदान्ततत्वविवेक)

चतुर्थ अध्याय
भ्रान्तिविचार

(क) भ्रान्तिविषयक मतभेदः—प्राच्य दर्शनशास्त्रोंमें जो वस्तु जिस स्वरूपकी नहीं, वह तदीय धर्मयुक्तरूपसे भासमानस्थलमें अर्थात् अन्यके अन्यधर्मरूपसे प्रकाशमानस्थलमें षड्विधमत सुप्रसिद्ध हैं। इसके दृष्टांत-स्वरूप शुक्तिरजत, रज्जु-सर्पादि लोकप्रसिद्ध स्थल यहां गृहीत किये जाते हैं। शुक्तिमें जब रजतकी प्रतीति होती है तब

(१) असत् रजतकी प्रतीति होती है यह (असत्-ख्यातिवाद) शून्यवादी बौद्धोंको अभिमत है। ऐसे मतको असत्ख्याति कहते है। असत्गोचर ज्ञान असत्ख्याति है। रजतभ्रम शुक्तिविषयक या रजतविषयक नहीं है। सुतराम् वह निर्विषयक है। निर्विषयक होनेसे असत्गोचर कहा जाता है।

(२) सत् रजतकी प्रतीति होती है यह रामानुजियोंको अभिमत है। यह मत सत्ख्याति नामसे प्रसिद्ध हैं। शुक्तिमें रजतका अवयव सत् (व्यावहारिक) हैं। वह सत्य अवयव शुक्तिगत रहनेसे शुक्तिरजतरूप प्रतीति होती है, क्योंकि सत्य विषयकाहि ज्ञान होता है असत्यका नहीं। रज्जुदेशमें सर्पांश विद्यमान रहनेसे सर्परूपसे ज्ञान सत्य हैं।

(३) अभ्यन्तरस्थ ज्ञानहि बाह्य रजतरूपसे प्रतीत होता हैं, यह विज्ञानवादी बौद्धोंको अभिमत है। यह मत आत्मख्याति कहलाता है। इसमतमें बाह्य रजत् नहीं है किंतु आन्तर विज्ञानरूप जो आत्मा उसके धर्मरूप रजतकी बाह्य प्रतीति दोषबलसे होती है।

(४) शुक्तिका इदमंशका प्रत्यक्ष और रजत्की स्मृति होती है, यह प्राभाकर मीमांसकोंको अभिमत है। यह 'अख्याति' नामसे प्रसिद्ध है। उक्त दो ज्ञानका विवेकाभाव तथा उनके विषयोंका विवेकाभाव 'अख्यातिवाद' का पारिभाषिक अर्थ है।

(५) देशान्तरस्थित सत्य रजत्मे अवस्थित जो रजतत्व उसका भान होता है, यह न्यायवैशेषिक लोगोंका अभिप्राय है। यह मत 'अन्यथाख्याति' कहा जाता है। अन्यरूपसे प्रतीति होनेके लिये उस 'अन्यका' कहींपर रहना आवश्यक है। अतः असन्निहित रजत्का अन्यत्र सत्व मानना चाहिये।

(६) अन्यत्र विद्यमान रजतका प्रत्यक्ष नहीं होता है किंतु व्यावहारिक शुक्तिरूप आश्रयमें (अधिष्ठानमें) प्रतीति-समकालीन (प्रातिभासिक) रजत्की तत्कालीन उत्पत्ति और उसका भान होता है यह अद्वैत वेदान्तियोंको अभिमत है। इसको अनिर्वचनीयख्याति कहते है। शुक्तिरूप व्यावहारिक सत् पदार्थके दृष्टिसे विचार करनेसे उस रजत्को सत् नहीं कह सकते, वह असत् भी नहीं, वह सदसत्‌स्वरूपभी नहीं है। जो प्रतिभात होता है अथच सद्रूपसे या असद्रूपसे या सदसत्उभयरूपसे निर्वचनही नहीं है वह अनिर्वचनीय कहलाता है।

(ख) **उक्त मतकी तुलना**:—सत्ख्याति और अख्यातिवादमे भ्रान्ति स्वीकृत नहीं कर सकते। सत्ख्यातिवादमे, शुक्तिरजतस्थलमें रजत रहनेसे रजतप्रतीति भ्रान्ति नहीं हो सकती, वैसेही अख्यातिवादीके मतमेभी भ्रम सिद्ध नहीं होता। 'इदं

रजतम् ' इस ज्ञानस्थलमे इदं का प्रत्यक्ष यथार्थ है और रजतका स्मरणभी यथार्थ (अबाधित) है। अपरमतचतुष्टयमे भ्रान्ति स्वीकार कर सकते है। उनमेंसे कोई मतमे पुरोवर्ती शुक्तिदेशमे असत् रजतकी प्रतीति, किसी मतमे धीरुप रजतकी बाह्यरुपसे प्रतीति मतान्तरमे देशान्तरस्थ रौप्यकी पुरोवर्तिरुपसे प्रतीति तथा अपरके मतमे अनिर्वचनीय रजतकी उत्पत्ति और प्रतीतिस्वीकृत होती है।

अब अद्वैतवेदान्तिसम्मत अनिर्वचनीयवादके साथ अन्यान्य मतकी तुलना की जाती है।

असत्ख्यातिवादी परमार्थतः असत्की सद्रूपसे ख्यातिको असत् ख्याति कहते है। वेदान्तमतमे प्रामाणिक असत्व माना नही जाता। इसमतमे प्रातीतिक सत्व अंगीकृत होनेसे असत्ख्याति नही है। सतख्यातिमतमे रजत-उत्पादक सामग्रीजनित उत्पद्यमान रजत शुक्ति-उत्पादन समयमेहि शुक्तिस्वरुपके साथ उत्पन्न होता है। उक्त वेदान्तमतमे ऐसा नहीं है किन्तु उक्त रजत प्रतीति-समयमेहि उत्पन्न ऐसा माना जाता है। उक्त रजत व्यावहारिक नहीं किन्तु प्रातिभासिक है। आत्मख्यातिवादमे रजत आन्तर सत्य है और उसकी बाह्यदेशमे प्रतीति भ्रान्तिपदवाच्य है अतएव इस मतमे बाह्य रजत माना नही है। उक्त वेदांन्तमतमे बाह्य रजत स्वीकृत होता है। शुक्तिरजत और उसका ज्ञान समकालीन उत्पन्न होता है, उभयही प्रतिभासमात्रकालस्थायी है। प्रभाकरमतमे प्रकृतस्थलमे दो पृथक् ज्ञान माने जाते है, शुक्ति और रजतका विशेष्य-विशेषणभाव अंगीकृत नही होता है। इस

हेतुसे भ्रान्तिज्ञान स्वीकृत नहीं होता। न्यायवैशेषिक मतमें 'इदम्' और 'रजतम्' इन वस्तुद्वयका तादात्म्यावगाहि विशिष्ट ज्ञान (रजतत्वविशिष्ट शुक्तिज्ञान) स्वीकृत होता है। इस हेतुसे भ्रमज्ञान मानते हैं। न्यायवैशेषिक और अद्वैतवेदान्त इन उभय मतमें विशिष्टज्ञानरूप भ्रम स्वीकृत होते हुए भी वेदान्ति लोग भ्रम-विषयका अनिर्वाच्यत्व स्वीकार करते है, नैय्यायिक उसका सत्यत्व अंगीकार करते हैं। न्यायमतमें अनिर्वचनीय या असत् ख्यातिगोचर होता नहीं है, किन्तु सत् ही सदन्तर रूपसे गोचरीभूत होता है। अन्यथाख्यातिवादीके मतमें शुक्ति-रजतज्ञानस्थलमें भ्रमका विषयीभूत या विशेषणभूत रजत पूर्वदृष्ट सत्यरजत व्यतिरिक्त कुछभी नहीं है। अद्वैतवेदान्तिके मतमें वह रजत पूर्वदृष्ट सत्य रजत नहीं है, परंतु अनिर्वचनीय वस्तु-विशेष है।

निम्नलिखित विचारस्थलमें अपरमत खण्डनपुरस्सर अद्वैत-वेदान्तमतका सिद्धान्त प्रतिष्ठित करनेका प्रयास किया जावेगा।

(ग) असत्ख्याति खण्डन—

शुक्तिरजत जब देखते है तब वह रजत असत् नहीं हो सकता क्योंकि उसकी अपरोक्ष प्रतीति होती है। असत् (सत्ता-स्फूर्तिशून्य) होते हुये प्रतीत होना विरुद्ध है। सत् और असत्का संबंध नहीं हो सकता। असंबद्ध वस्तु ज्ञानद्वारा प्रकाशित नहीं हो सकती। जोभी शब्द असद् प्रतिपादनमें सक्षम है। [जैसे वन्ध्यापुत्र, शशशृंग इत्यादि असत्बोधक शब्द-द्वारा विकल्पज्ञान (वस्तुशून्य शब्दज्ञानानुपातिज्ञान) उत्पन्न होता

है] तोभी इंद्रिय कभीभी असन्निकृष्टका ग्राहक नही होता। तुच्छ पदार्थका आकार वृत्तिगत होते हुएभी वृत्तिका संबंध तुच्छगत नही होता। विकल्पज्ञानस्थलमे पदार्थकी अपरोक्ष गोचरता नही होता। यदि असत् (निष्प्रकारक) है तो प्रत्यक्ष द्वारा 'रूप्य' ऐसे विशेष प्रतिभासका अभाव हो जाता। यद्यपि उत्तरकालमे वह वस्तु (रजत) प्रतिभासित नही होती तथापि जिस समय वह प्रतिभासित होती है तब उसको विद्यमान कहना पडेगा, अन्यथा स्वप्रतिभास समयमे कोईभी पदार्थका आस्तित्व सिद्ध नही होगा। यदि अत्यन्त असत्को आरोपणीय मानोगे तो प्रतिभासभेद और तदनुसार प्रवृत्ति अनुपपन्न होगी। उक्त भ्रान्ति निवृत्तिके अनन्तर शुक्तिज्ञान होनेसे उस रजतका बाध (निषेधप्रत्यय) होता है। वह प्रतिभास यदि असत् होता तो उक्त बाध होना असमव है। प्रसक्तकाहि बाध होता है। असत्की प्रसक्ति अशक्य होनेसे उसका निषेध होना संभव नही है। अतएव बोध और बाधद्वारा अवगत होता है कि उक्तरजत असत् नही है। उक्त प्रतिभास साधिष्ठान होता है, और 'नेदंरजतं' ऐसा बाध सावधिक है ऐसे नियम होनेसे तथा उसकी अपरोक्ष प्रतीति होनेसे उस प्रतीतिका आलम्बन नरशृंगवत् असत् नही है। अतएव असत्ख्यातिवाद समीचीन नही है (१)

---

(१) (क) सामर्थ्यस्यच कुत्र सामर्थ्यं इति विषयसापेक्षत्वेन विषयस्य असतश्चकार्यत्वाभ्यविकल्पासहत्वात् असतएव असत्ख्याति (भामती)

(ख) प्रमाणेनासदंशाम्यानुल्लेखे असत्ख्यातित्वासिद्धे उल्लेखेतु प्रमाणस्याप्रमाणताया (असत्विषयत्वात्) असतो वा सत्वस्य प्रसगात् (आत्मतत्वविवेकदीधिति)

(घ) सत्ख्यातिखण्डन :—

रामानुजका मतभी संगत नहीं है। इनका कहना यह है कि शुक्तिमे जो रजत-भ्रान्ति होती है वह उसमे रजतका अवयव होनेसे होता है और यह रजतका अवयव शुक्तिमे सत् है। परंतु समझो कि जहां जहां जिस समय शुक्तिमे रजतकी भ्रान्ति होती है उसी समय शुक्तिको अग्नि-संयोग किया जावे और उसी क्षणमे शुक्तिका ध्वंस होकर उसकी भस्मकी प्राप्ति हो; इसस्थलमें रजतज्ञानकी निवृत्ति इसमतानुसार नहीं हुई। शुक्ति-ध्वंस और भस्मके उत्पत्तिके पहिले रजतकी निवृत्ति न होनेसे भस्मदेशमे रजतका लाभ होना अवश्य है; क्योंकि रजतद्रव्य तैजस है उसका गंधकादि संबंधविना ध्वंस नहीं होता। अतएव भ्रमस्थलमे व्यावहारिक रजतरूप सत् पदार्थकी ख्याति होती है ऐसा सत्ख्यातिवाद असंगत है। जिस स्थलमे एक रज्जुमे भिन्न भिन्न दश व्यक्तियोंको भिन्न भिन्न पदार्थ प्रतीत होते है (यथा एकको सर्पप्रतीति दुसरेको दंडप्रतीति, तिसरेको माला प्रतीति चौथेको वृक्षकी छाला इसी प्रकार जलधारा, रेखा इत्यादि भिन्न भिन्न प्रतीति) उसस्थलमे उस स्वरुप रज्जुदेशमे ये भिन्नभिन्न पदार्थोंके अवयव रहना अशक्य है; क्योंकि जो द्रव्य मूर्त होता है वह स्थाननिरोध करता है। यदि कहा जावे कि रज्जु-देशमे प्रतीत वे सर्पादि, स्थान निरोध नहीं करते तो उनको सत् कहना विरुद्ध और निष्फल है। यदि अवयव स्थाननिरो-धिका हेतु न हो, और अवयवीद्वारा यदि कोई कार्य साधित

न हो तो उसको किस प्रकार सत् कहें। उनकी प्रतीतिमात्र है और उनके द्वारा अन्य कार्य नही होता ऐसा कहनेसे अनिर्वचनीयताहि सिद्ध होगी। अर्थात् सर्पादि सत् नही है असत्भी नही परंतु वे प्रतीतिस्वरूपमात्र (प्रातिभासिक) है, व्यावहारिक नही है। इस हेतुसे उक्त सर्पादि व्यावहारिक देश निरुद्ध नही करते।

शुक्तिदेशमे रजतज्ञान होनेके पश्चात् उस शुक्तिका ज्ञान होनेसे शुक्तिमे रजत नही ऐसा अनुभव होता है। शुक्तिदेशमे सत् रजत स्वीकार करनेसे उक्त बाधज्ञान (रजताभावज्ञान) निर्विषय होगा। सत्ख्यातिवादके अनुसारसे शुक्तिदेशमे व्यावहारिक रजत होनेसे तत्कालमे व्यावहारिक रजताभाव रह नही सकेगा। व्यावहारिक रजत रहनेसे शुक्तिमे रजत नही है एतादृश बाधज्ञान हो नही सकेगा अथच एतादृश बाधज्ञान अनुभवसिद्ध है। उक्त बाध-प्रत्यय-उक्तरजत प्रतीतिके समान बाधित नही होता। अतएव रजतका अभाव वस्तुतः है। उक्त बाधज्ञान द्वारा जाना जाता है कि शुक्तिमे जो रजत प्रतीत हुआ वह व्यावहारिक सत् नही किंतु प्रातीतिक है। वह यदि पारमार्थिक या व्यावहारिक सत् होता तो व्यवहार कालमे उसका बाध कभीभी नही होता। रजत प्रातीतिक होनेसे व्यावहारिक शुक्तिके ज्ञानद्वारा उस रजतका बाधज्ञान सुसंगत होता है। शुक्तिमे व्यावहारिक रजत होनेसे शुक्तिके समान सर्वदा उसका ग्रहण हो सकताथा परंतु ऐसा नही होता। 'इदंरजतं' ऐसी प्रतीति तात्कालिक रजत स्वीकार करनेसेभी उपपन्न होती है,

इस उपपात्तिके लिये पूर्वसिद्ध रजतका अवयव मानना उचित नही है। (२) व्यावहारिक रजतमें रजतावयवकी अपेक्षा है परंतु प्रातिभासिक पदार्थमें उसकी (अवयवकी) अपेक्षा नहीं है।

पूर्वपक्षी (सत्ख्यातिवादी):—— शुक्तिदेशमें जो रजतका अवयव है वही सत्-रजतकी सामग्री है।

सिद्धान्ती:---इसस्थलमें यह प्रष्टव्य है कि रजतावयवका रूप उद्भूत है अथवा अनुद्भूत है? उद्भूतरूप कहनेसे रजतावयवकाभी रजतके उत्पत्तिके पहिले प्रत्यक्ष होना उचित है। यदि अनुद्भूतरूप कहोगे तो अनुद्भूतरूपविशिष्ट अवयवसे रजतभी अनुद्भूतरूपविशिष्ट होगा सुतरां रजतका प्रत्यक्ष नही होगा (३)

अतएव इंद्रियदोषरहित लोगोंसे रजत गृहीत न होनेसे और रजतका बाध होनेसे तथा वह मिथ्या ऐसा सर्व लोगोंके प्रतीतिगोचर होनेसे (एतावत्काल शुक्ति मिथ्याहि रजतरूपसे प्रतिभात हुआथा ऐसी उत्तरकालीन अनुसंधानात्मक प्रत्यभिज्ञा होती है) भ्रान्तिस्थलमें उत्पन्न प्रातिभासिक रजतका मिथ्यात्वहि सिद्ध होता है, वह सत्य रजत हो नही सकता (४)

---

(२) शुक्तिषु रजतावयवाना सत्वे शुक्तिदाहे क्षारभाववत् द्रवीभावस्याप्युपलब्धिप्रसंगः। (वेदान्त कल्पतरुपरिमल)

(३) भूतानामेव पञ्चीकृतत्वात् भौतिकाना तदभावात् अन्यथास्तभादौ अपिरजतप्रतीतिप्रसंगात्।

(नृसिंहाश्रम विरचित संक्षेपशारीरकतत्त्वबोधिनी-

-अमुद्रित)

(४) सत्ख्यातिखण्डनप्रसंगमे अधिकांशविचार हिन्दीवृत्तिप्रभाकर ग्रंथसे लिया है। सत्ख्यातिवादका विशेष खण्डन संस्कृतसिद्धान्तसिद्धांजन ग्रंथमें (चतुर्थ भाग) पाया जाता है।

(ड) सदसत्ख्यातिखण्डन :—

ख्यातिमात्र केवल असत् विषयक या सत्-विषयक नहीं होता किन्तु सदसत् उभयविषयक (सांख्यसम्मत) होता है ऐसा मत सगत नहीं है। जो सत् नहीं या असत् नहीं वह सदसत्का मिश्रणरूप कैसे होगा ? सत् और असत् परस्पर विरोधी है। एकही वस्तु सत् और असत् नहीं हो सकती। एकही काल भेदसे उभयाकार होती है ऐसाभी नहीं है। एकहीका काल-भेदसे उभयाकारत्व होनाही असभव है। इस स्थलमे प्रष्टव्य है एकतर आकारकालमे (रजताकारकालमे) अन्यतराकार (शुक्त्याकार) नष्ट होता है या रहता है ? आद्यपक्ष समीचीन नहीं है क्योंकि विभ्रमानन्तरभी " यह वही शुक्ति " ऐसा प्रत्य-भिज्ञा होती है। द्वितीयभी नहीं। ऐसा होनेसे शुक्तिज्ञान कालमे पूर्वप्रतीत रजतकाभी प्रत्यय है ऐसा मानना पडेगा परतु ऐसा नहीं होता। अतएव वस्तु स्थित या नष्ट होनेमे एक अन्याकार नहीं हो सकता।

(च) ज्ञानात्मक रजत ख्याति खण्डन—

बोध और बाधद्वारा ज्ञानात्मक (विज्ञानवादी बौद्धसम्मत) रजत सिद्ध नहीं होता। यह रजत यदि आन्तर विज्ञानाभिन्न होगा तो ' मै यह रजत ज्ञान रहा हूँ ' ऐसा भेदानुभव न होता। सुखादिके समान रजतकी अन्तरान्तरसे प्रतीति न होनेसे 'इदं रजत' ऐसा प्रत्यय बहिर्विषयक होता है ऐसा स्वीकार करना होगा यह प्रत्यय इदत्व और रजतत्व के सामानाधिकरण्यको विषय करता है अतएव उस सामानाधिकरण्य-विषयमे ही उक्त प्रत्यय

प्रमाण होता है, रजतके आन्तरत्व विषयमें उक्त प्रत्यय प्रमाण नहीं है। बहिर्देशमें इदंकारास्पद रजत प्रतीत होनेसेही लोभी मनुष्य उसके ग्रहणार्थ बहिर्देशमें भागता है। रजत देहाभ्यन्तर मे रहनेसे 'मेरेमे रजत है' ऐसी प्रतीति होती। प्रतीतिही वस्तु स्वीकारमें शरण है। विज्ञानसे रजतका विच्छेद प्रतीत होनेसे वह आन्तर नही है। बाह्य देशमें शुक्ति मानकर शुक्तिरजतको देहाभ्यन्तरस्थित कहनाभी संगत नही है। शुक्तिसे व्यवहित आंतरदशमें रजत होगा तो उसमें शुक्तिधर्म इदंताकी प्रतीति होना असंभव है। अतएव शुक्तिरुप्यादि भ्रमस्थलमें उस रुप्यादिका बाह्यत्वका निषेध और आन्तरत्वका विधान अनुभवबलसे नही कर सकते। 'नित्यत्वकार्यत्वाभ्याम् घटितपरजतानिरुपणाच्च'।

बाधप्रत्ययके बलद्वारा भी ज्ञानात्मक रजत सिद्ध नहीं होता। 'यह रजत नहीं' ऐसा बाधज्ञान पुरावर्ती द्रव्यमें रजतके भेदमात्रको विषय करता है, रजतके ज्ञानस्वरुपत्वको अवगाहन नही करता है। अर्थात् उक्तज्ञान पुरोवर्ती द्रव्यको रजतसे विवेचन करता है। किन्तु रजतके ज्ञानाकारत्वको गोचरीभूत नही करता, उक्त बाधज्ञान प्रसक्तका प्रतिषेध करता है, अप्रसक्तका विधान करता नहीं। जो प्राप्त है वही सर्वत्र बलवत् प्रमाणद्वारा बाधप्राप्त होता है। अप्राप्त या प्रमित (प्रमाणगम्य पदार्थ) बाधित नहीं होता। उक्त स्थलमें दोष परिकल्पित अवभासमान रजतही प्रसक्त है। इस प्रसक्तकाही प्रतिषेध उक्त ज्ञानद्वारा होता है। वह प्रतिषेध

पुरोवर्ती बाह्य प्रदेशमें होता है, उस रजतका अधिष्ठान बाह्यदेशस्थरूपसे प्रतिभात होता है। वह रजत यदि आन्तर होता तो 'यह बहिस्थ रजत नहीं किन्तु आन्तर है' ऐसा बाधप्रत्यय होता। परन्तु ऐसा प्रत्यय नहीं होता है। विप्रकृष्ट रजत ज्ञात होकरही बाधकालमें नेद रजत ऐसा प्रत्यय होता। जो अस न्निहित है वह ज्ञानाकार हो नहीं सकता। शुक्तिका ज्ञान होनेके पश्चात् 'मेरा मिथ्या रजत प्रतीत हुआथा' ऐसा बाध सर्वानुभवसिद्ध है। उक्त मतानुसार रजतमें 'मिथ्या बाह्यता प्रतीत हुईथी' ऐसा बाध होना उचित है किन्तु ऐसा नहीं होता। अतएव आभ्यन्तर रजत बहिर्वत् अवभासप्राप्त होता है ऐसा मत सगत नही है। ऐसा होनेसे बाह्य शुक्तितत्वके ज्ञानद्वारा उस रजतका बाध्यत्व, बाह्य पुरोवर्ती पदार्थमें प्रवृत्ति, वहि पदार्थके साथ रजतका तादात्म्यानुभव, ये सब उपपन्न नहीं होते।

(छ) अख्याति खण्डन —

शुक्तिरजत-प्रतीतिस्थलमें शुक्तिकी इदमंशका प्रत्यक्ष और रजतकी स्मृति ये दो (उभयही यथार्थविषयक) ज्ञान होते है, ऐसा मत (प्रभाकरमत) खण्डित करते है। ये दो ज्ञानसे रजतार्थि मनुष्यकी रजत लेनेकी प्रवृत्ति उपपन्न नहीं हो सकती। 'इद' ऐसे ज्ञानमे प्रवृत्ति नहीं हो सकती। ऐसा होनेसे अतिप्रसग हो जायगा अर्थात् रजतार्थि लोष्ट्रादिमेंभी प्रवृत्त होगा। जो विशेषज्ञान (इद रजतं) है उसका विषय सामान्य (इद) नहीं हो सकता। रजतज्ञानमात्रसेभी प्रवृत्ति नहीं हो

सकती, अन्यथा देशान्तरमेंभी प्रवृत्ति प्रसंग होगा। और रजतज्ञान शुक्तिविषयत्व बिना वहांपर प्रवर्तक नहीं होगा। अन्य विषयसे अन्यत्र प्रवृत्ति युक्तियुक्त नहीं है। ज्ञान स्वविषयमेंही प्रवर्तक होता है। उक्त रजतादिज्ञान पुरोवर्ति-विषयक होता है ऐसा कहना होगा क्योंकि वह ज्ञान पुरोवर्तिमें नियमपूर्वक प्रवर्तक होता है। जो ज्ञान तदर्थीको इसप्रकार प्रवर्तन करता है वह ज्ञान तद्गोचर होता है। अतएव अनुमित होता है कि-रजतज्ञान (पक्ष) शुक्तिविषयक (साध्य) क्योंकि वह तद्गोचर व्यवहारका हेतु (हेतु) जैसा शुक्तिज्ञान (दृष्टांत)। सुतरा शुक्तिरजत विशिष्ट ज्ञान है ऐसा अनुमानसे सिद्ध होता है। उक्त ज्ञानद्वयके भेदाग्रहमें (अविवेकसे) प्रवृत्ति उपपन्न होती है ऐसा कहना सगत नहीं है। ' इदं ' का प्रत्यक्ष और रजतका स्मरण ये ज्ञानद्वय यदि भासमान् हो तो इनका विवेकाभाव नहीं हो सकेगा। ' दो हैं ' ऐसा ज्ञात होनेके लिये द्वित्वके आश्रयभूत वस्तुद्वयका भेदज्ञान आवश्यक है। अतएव भेदाग्रह नहीं होगा। यदि उक्त ज्ञानद्वय भासमान न हो तो उनका अस्तित्वही प्रसिद्ध नहीं होगा। औरभी, अभावरूप अविवेक प्रवृत्तिका प्रयोजक हो नहीं सकता। प्रवृत्तिका जो विषय उसका ज्ञान और इष्ट उपस्थितिही प्रवृत्ति की कारण है। सुतरा उक्त ज्ञानद्वय स्वीकार करनेसे प्रवृत्ति संगत नहीं होती किन्तु विशिष्टज्ञान स्वीकार करनेसेही रजतार्थी की प्रवृत्ति सुसंगत होती है (५)

---

(५) न च स्वतन्त्रोपस्थितेष्टभेदाग्रहात् प्रवृत्तिः, तन्मते (प्रभाकरमते) भेदस्य स्वरूपात्मकतया तदग्रहायोगात्। लाघवेन इष्टोपस्थितिरेव प्रवर्तकत्वाच्च। (अद्वैतचिंतामणि)

इदं और रजत इन उभयका संबंध स्वीकार करनेसेही रजतत्व विशेषणरूपसे (गौणरूपसे) प्रतिभात होकर 'इदं रजतं' ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो सकेगी। यदि इदं और रजतका संबंध भान न हो तो 'इदं' और 'रजतत्व' स्वतंत्र होगा। ऐसा होनेसे 'इदं इति,' 'रजतत्व इति' ऐसा बोध उत्पन्न होगा, इदंरजतं ऐसा बोध नहीं होगा। अथच ऐसा बोध तो पाया जाता है। अतएव इदंविशिष्ट रजतकी प्रतीति स्वीकार करनी पडेगी। ऐसा स्वीकार करनेसे उक्त अनुभव सूपपन्न होता है। अनुभवका अपलाप करना अनुचित है। इदं रजतं यह यदि ज्ञान द्वय होगा तो ऐसा निश्चय होना चाहिये कि, इदंपश्यामि *रजतं स्मरामि। किन्तु ऐसा नहीं होता। दो अंश समान संवेदित* होनेसे एक (इदमंश) प्रत्यक्षलब्ध और अपर स्मरणफल ऐसा विभाग नहीं हो सकेगा। पूर्वदृष्ट रजत प्रतिभात होनेसे इदंरूपसे भान नही होता किन्तु जहांपर रजत दृष्ट हुआथा वहाका रजत ऐसा बोध होगा। दोषवशात् तत्ताका प्रमोष (लोप) होनेसे इदं रूपसे भान होता है ऐसा कहना अनुचित है क्योंकि तत्ताका प्रमोष होनेसे स्मृतित्वका निश्चय नहीं हो सकेगा। शुक्तिके इदमंशस्वरूपमे रजतकी स्पष्ट प्रतीति होनेसे वह पुरोवर्ती शुक्तिका अनुसारी है, पूर्वदृष्ट का अनुसारी नही है। "स्पष्ट" शब्दसे भ्रान्तिकालीन पुरोदेश--संश्लिष्टरूपसे रजतका स्फुरण और पुरोवास्थितत्वरूपसे अवभासन तथा बाधज्ञानके उत्तरकालमे इदं सहित संश्लिष्टरूपमे अनुसंधीयमानत्व (एतावन्तं

काले इद रजतं इति अभात्) ज्ञापित होता (६) शुक्ति-देशमे, रजत अनुभूतरूपसे प्रकाशित नही होता किन्तु अनुभूयमानरूपसे (साक्षात्कार कर रहा हू ऐसा) होता है। अनुभूतता ग्रहण स्मरण है, अनुभूयमानता ग्रहण स्मरण नही है। प्रवृत्ति-अनुरोधसे भी रजतका स्मरणज्ञान नही है किन्तु इद-विशिष्ट रजतका प्रत्यक्षज्ञान स्वीकार्य है। प्रवृत्ति-विषयकत्वका अभाव होनेसे तथा तद्विषयक इच्छा-जनकत्वका अभाव होनसे, रजतस्मरण शुक्तिदेशमे प्रवर्तक नही हो सकता। सन्मुखस्थित इद पदार्थमे रजतबुद्धि होती है इसिलेये रजतार्थि होकर उसके ग्रहणमे मनुष्य प्रवृत्त होता है। अतएव वह भेदाग्रह एक तृतीय विशिष्टज्ञानको (यह रजत ऐसे ज्ञानको) उत्पादन करकेही ऐसे प्रवृत्तिका कारण होता है ऐसा कहना होगा। शुक्तिदेशमे इदविशिष्ट रजतका ज्ञान यथार्थ नही किन्तु भ्रमरूप होगा। (७)

(ज) अन्यथाख्याति खण्डन —

पूर्वपक्ष रजत अन्यत्र रहता है। दोषवशात् शुक्तिमे देशान्तरीय

---

(६) स्मृतेरदात प्रमाणासम्भवात्, स्मृतिश्चेत् इद रजतज्ञान तदाग न्यादिस्मृतिवत् स्वार्थं गृह्यमाणात् विविच्यात् न विविनक्तीत्यतो न स्मृति।
(वाक्यार्थदर्पण अमुद्रित)

(७) रजतमिदमिति सामानाधिकरण्येनैकार्थप्रतिभासात् तन्मनेच्च सवित्तस्यरात्स्वात् रजताद्यभिमानिपानेन तदर्थिनस्तत्र प्रवृत्त बाधप्रत्ययस्य तथाविधबाधविषयस्य न प्रादुर्भावात् न तावत् अख्याति.

(न्यायमञ्जरी)

रजतही रजतरूपसे ग्रहण होता है।

सिद्धांत (१) बोध-बोध द्वारा अन्यथाख्याति वाद सिद्ध नहीं होता इसका निरुपण करते है। प्रकृतस्थलमें उक्त रजतज्ञान परोक्ष नहीं है क्योंकि पुरोवर्ती देशमे रजत साक्षात् कर रहां हू ऐसा अनुभव होता है। यह ज्ञान देशान्तरीय रजतका नहीं है। नेत्रद्वारा व्यवहित रजतका ज्ञान संभव नहीं हो सकता। क्वित (निर्णीत) सहकारी विना इंद्रियका कार्यजनकत्व नहीं होता। विशेषण और विशेष्य एतदुभयका सन्निकर्ष न होनेसे विशिष्टका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। विशेष्यके साथ सन्निकर्ष और विशेषणका ज्ञान ऐसी विशिष्ट ज्ञानकी सामग्री रहते हुए भी विशेषणके साथ सन्निकर्षका अभाव होनेसे विशिष्टज्ञान दृष्ट होता नहीं, अन्यथा दंण्डहीन पुरुषका 'दंण्डी' ऐसा विशिष्ट प्रत्यक्ष हो सकता है। बुद्धि विशेषणको न जानते हुए विशेष्य को अवगाहन नहीं करती। अपरोक्षज्ञान यदि असन्निहित वस्तुका आकार धारण करे तो वह सर्वाकारयुक्त हो जायगा। प्रत्यक्ष, वर्तमान संबद्ध योग्य पदार्थकोही ग्रहण करना है, यही नियम है। व्यवहित रजतगत रजतत्वका ज्ञाताके साथ संबंध संभव नहीं है। सुतरां प्रत्यक्ष-ज्ञानस्थलमे पुरोवर्तिदेशमे रजतका सत्ता अवश्य होना उचित है। जिसहेतुसे रजत प्रत्यक्ष हो रहा है अथच उस स्थलमे कोई वास्तविक रजत विद्यमान नहीं है इसीहेतुसे उसस्थलमे कोई प्रातिभासिक या अनिर्वचनीय रजत उत्पन्न होता है ऐसा स्वीकार करना होगा।

पूर्वपक्ष —' सुरभिचंदन ' इत्यादिके समान ज्ञानरूप प्रत्यासत्ति (सन्निकर्ष) द्वारा रजतत्व जातिका प्रकृतस्थलमें (शुक्तिरजत प्रत्यक्षस्थलमें) प्रकाररूपसे (विशेषणरूपसे) भान हो सके अर्थात् रजत दूरदेशमे रहनेसेभी ऐसे सन्निकर्ष द्वारा उसकी प्रत्यक्ष प्रतीति इस स्थलमें हो सकेगी । सुरभिचंदनज्ञान इसका दृष्टांत है पहिले चंदन आघ्राण करके जाना गया कि चंदनमे सौरभ है, पश्चात् दूरसें चंदन देखकर घ्राण न लेकर कह सकते है कि सुरभिचंदन है । इस स्थलमें पहिले का सौरभ ज्ञान हीं सौरभके चाक्षुष प्रत्यक्षमे प्रत्यासत्तिरूप होता है ।

सिद्धांतः-सुरभिचंदनदृष्टान्त समीचीन नही है। उक्त स्थलमे सुरभिका प्रत्यक्ष नहीं होता । वह यदि साक्षात्कार होता तो ऐसा अनुव्यवसाय (मानसप्रत्यक्ष) होता कि चंदन देखरहा हूं और सौरभका घ्राण ले रहा हूं । परंतु ऐसा नही होता । चंदन देख रहा हूं और सौरभ स्मरण कर रहा हूं ऐसा सार्वजनीन अनुभव होता है । अतीत दण्डमे " इदानीम् चक्षुद्वारा दण्ड जान रहा हू " ऐसा अनुभव न होनेसे तदंशमे चक्षुजन्यत्व नही है किन्तु संस्कारसे जन्य होनेसे स्मृति है । दण्ड स्मरण कर रहा हूं ऐसा अनुभव भी होता है । अतएव ज्ञान प्रत्ययासत्ति नही है । औरभी भ्रान्तिस्थलमे ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष स्वीकार करनेसे अनुमान प्रमाणका उच्छेद होगा । " पर्वतो वन्हिमान " ऐसा अनुमिति-ज्ञान अनुमान-प्रमाण-जनित होता है । हेतुमे (धूमरूपहेतु) साध्यके (वन्हिके) व्याप्तिके (नियतसंबंध) स्मरणसे अथवा साध्यके व्याप्तिके उद्बुद्ध संस्कारसे अनुमितिज्ञान होता है।

साध्यके व्याप्तिकी स्मृति होनेसे व्याप्ति निरूपक साध्यकीभी स्मृति होती है। अतएव प्रकृतस्थलमे अनुमितिकी सामग्री जो व्याप्तिज्ञान और प्रत्यक्षकी सामग्री जो वन्हिका पूर्वानुभवजनित स्मृतिरूप ज्ञानलक्षणा सन्निकर्ष तदुभय विद्यमान रहता है इसलिये पर्वतमे वन्हिकी अनुमिति न होकर वान्हिका प्रत्यक्षही हो सकेगा। पर्वतके साथ नेत्रका संयोग और वन्हिके स्मृतिसे 'पर्वतो वन्हिमान' ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञानही होगा। एक विषयमे यदि अनुमितिकी सामग्री और प्रत्यक्षकी सामग्री विद्यमान रहे तो उस विषयकी अनुमिति नहीं होती किन्तु प्रत्यक्ष होता है। सुतरा पक्षमे (पर्वतमे) साध्य निश्चयरूप अनुमितिज्ञानका जनक अनुमान प्रमाण का अगीकार निष्फल होगा। अतएव स्मृति-ज्ञानसहित इन्द्रिय-संयोगसे या सस्कारसहित इन्द्रियसयोगसे व्यव-हित वस्तुका प्रत्यक्षज्ञान सभव नहीं है अथच शुक्तिरजत प्रत्यक्ष है। सुतरा शुक्तिका रजतत्वरूपसे प्रतीतिरूप अन्यथाख्याति संभव नहीं है। यदि अन्यत्र इन्द्रिय सयोगादि अजन्य ज्ञानमे साक्षात्कार कर रहा हू ऐसा अनुभव होता तो ज्ञानको प्रत्या सत्ति कह सक्ते थे परतु ऐसा होना नहीं। प्रत्यभिज्ञाको (सोय देवदत्त) दृष्टात रूपसे उपन्यस्त किया नहीं जा सकता क्योंकि प्रत्यभिज्ञाभी तत्ताशमे स्मरणही है, तदुपलक्षित ऐक्याशमे प्रत्यक्ष (क्योंकि वह इन्द्रियसन्निकृष्ट) है। "अनुव्यवसायश्च विप्रति-पन्न इति न ततोऽपि नानप्रत्यासत्तित्व"। औरभी ज्ञानमात्र ही प्रत्यासत्ति नहीं किन्तु जिस अवच्छेदमे जो अनुभूत होना है उस अवच्छेदमे वह ज्ञान प्रत्यासत्तिरूप होता है ऐसा कहना

होगा । परंतु शुक्तित्वावच्छेदमे रजत पहिले अननुभूत होनेसे वहांपर ज्ञानका प्रत्यासत्ति न होगा ।

पूर्वपक्षः–दोपही प्रत्यासत्ति है ।

सिद्धांत —दोपको प्रत्यासत्ति कह नही सकते । विशेषणांशमे (रजतत्वांशमे) जो यथार्थ ज्ञान है उसका अजनक दोप होता है । प्रकृतस्थलमे रजतत्वांशमे ज्ञान यथार्थ हैं अतएव दोप प्रत्यासत्तिरूप नहीं है । औरभी, वैशिष्ट्य [शुक्तिमे रजतत्वका वैशिष्ट्य] असत् होनेसे उस असत् वैशिष्ट्य के साथ दोपके संबंधाभावके कारण तदीयत्व अनुपपन्न है अर्थात् दोपरूप संबंध असत्का नही होगा, क्योंकि असत्का सत्के साथ संबंध नही हो सकता । निस्स्वरूप असत्के साथ स्वरूपसंबंधभी कहा नही जा सकता । संबंधविनाभी दोपसे रजतादिकी प्रतीति होगी ऐसा वचन संगत नही है क्योंकि विशिष्ट-ज्ञानमात्रमे विशेषण-सन्निकर्षकाभी कारणत्व होता है । प्रकृतस्थलमें विशेषण जो असत्-वैशिष्ट्यादि उनकेसाथ दोपका सन्निकर्ष नहीं होगा । दोपवशात् देशान्तरस्थका ग्रहण संभव नहीं हैं । दोप गुरुत्वादिके समान आश्रय-परतंत्र है, वह स्वाश्रयमे या स्वाश्रय-संयुक्तमे कार्यकारी होता है, असन्निहितमे नहीं ।। किंच दोपको यदि सन्निकर्ष मानोगे तो भ्रमात्मक अनुमिति नहीं होगी किंतु दोपरूप सन्निकर्ष रहनेमे प्रत्यक्ष ही होगा । दोप यदि इंद्रियक सन्निकर्ष होगा तो विभ्रम दोपजन्य नहीं होगा किन्तु इंद्रियजन्य होगा । अतएव विभ्रम दोपजन्य है ऐसे पूर्वपक्षि-सम्मत कार्यकारण-भावकी

क्षति होगी । दोषवशात् यदि असन्निकृष्टका भी मान होगा तो ज्ञानके समान-विषयत्वबिना दोषसेही विसंवादि प्रवृत्ति संभव होगी अतएव अन्यथाख्याति नही होगी । अतएव देशान्तरीयका सन्निकर्ष न होनेसे भ्रमस्थलमे देशान्तरीय पदार्थ दृष्ट नही होता ।

प्रवृत्ति—बोधद्वारा अन्यथाख्याति सिद्ध नही हुई ऐसा प्रतिपादन किया । अब प्रदर्शित करते है कि लोगोंकी शुक्ति ग्रहणमे जो प्रवृत्ति होती है वह अन्यथाख्यातिवादमे संगत नही है। ज्ञान स्वविषयमे प्रवर्तक होता है । रजतज्ञानका विषय जो रजत उसका अन्यत्र अस्तित्व रहनेसे वहांपरभी प्रवृत्ति होना उचित है, सन्मुखदेशमे प्रवृत्त होना संगत नही है ।

पूर्वपक्षः- रजत उसका (ज्ञानका) विषय नही है, शुक्तिही विषय है ।

सिद्धांत—अन्याकारज्ञान अन्यालबन नही होता, यह ज्ञानविरुद्ध है । यदाकार जो ज्ञान है वह तदालंबन है यह अन्यत्र दृष्ट होनेसे रजतज्ञानका शुक्त्यालंबनत्व माननेसे विरोध होगा ।

पूर्वपक्ष—ज्ञान शुक्तिमे रजतत्वके वैशिष्ट्यको विषय करता है अतएव अनुभवविरोध नही है किंवा वहापर प्रवृत्तिभी अनुपपन्न नही है । जहांपर इष्टतावच्छेदक-वैशिष्ट्यको (जो धर्मयुक्त पदार्थ इष्ट है उस धर्मके संबंधको) विषय करता है वहांपर ज्ञान प्रवर्तक होता है ।

सिद्धांत—ऐसा कहना संगत नही है । इदं रजतं ऐसा ज्ञान पुरोवर्ती पदार्थमे रजतत्व-वैशिष्ट्यके अभेदको विषय करता है परंतु पुरोवर्तिमे रजतत्वके संसर्गको विषय नही करता ; क्योंकि "रजत" ऐसे ख्यातिमे रजत उपसर्जन (प्रकार, गौण) होनेसे रजतत्वका

आरोप संभव नहीं है। आरोप होनेके लिये आरोप्य की स्वतंत्र उपस्थिति होना आवश्यक है। (प्रकृतस्थलमें रजतं इस स्मृतिमें रजतत्वकी स्वतंत्र उपस्थिति नहीं है)। ऐसा नियम (आरोपमें आरोप्यका स्वतंत्र-उपस्थिति हेतु यह नियम) न माननेसे संसर्गाभावबुद्धिका नियामक प्रतियोगी-आरोपसमयमें तादात्म्यारोप हो जायगा (८) तात्पर्य यह है कि संसर्गाभावबुद्धिका नियामक तादात्म्यारोप नहीं होता ; परंतु वह भी हो जायगा क्योंकि तादात्म्यारोपमें प्रतियोगीका आरोपभी हो सकेगा ; कारण, पूर्वपक्षिलोग आरोप्यकी स्वतंत्र-उपस्थिति आरोपके लिये स्वीकार नहीं करते। स्वतंत्र उपस्थिति आरोपमें कारण है ऐसा यदि स्वीकार किया जावे तो तादात्म्यरोप प्रसंग नहीं होगा क्योंकि तादात्म्यरोपमें

---

(८) अभाव दो प्रकारका है संसर्गाभाव (negation of correlation) और अन्योन्याभाव (negation of identity)। अभाव ज्ञानमें प्रतियोगिज्ञान हेतु होता है। प्रतियोगिका (जिसका अभाव है उसका) संसर्ग आरोप करके जो अभाव की बुद्धि होती है वह संसर्गाभाव है। यहांपर यदि संयोगादि संबंधसे यह वस्तु रहता तो उसकी उपलब्धि होती इस प्रकार संसर्गका आरोप करके जो अभावकी बुद्धि होती है यथा यहांपरयहवस्तु नहीं है, वह संसर्गाभाव है। जहांपर संसर्गरूपसे प्रतियोगी निषिद्ध होता है वहांपर उस निषेधका संसर्गाभाव कहा जाता है। प्रतियोगीका तादात्म्य (तदात्मता, तद्गत असाधारण धर्म, जैसे घटमें घटत्व) आरोप करके जो अभावकी बुद्धि होती है (यथा यहवस्तु वह नहीं) वह अन्योन्याभाव या तादात्म्याभाव है। भूतल घट नहीं, यह अन्योन्याभाव का दृष्टांत है, भूतलमें घट नहीं यह संसर्गाभाव है।

प्रतियोगी स्वतंत्र उपस्थित नही है (किंतु तादात्म्यके विशेषण रूपसे)। स्वतंत्र उपस्थित जो रजत उसके आरोपकी सामग्री रहते हुए रजतका उपसर्जन जो रजतत्व उसकाहि आरोप होता है ऐसा नियम नही किया जा सकता। रजतत्व और रजत इन दोनोके आरोपमे प्रमाण नही है। भ्रमके पहिले नियमपूर्वक ' रजतत्व ' ऐसा स्मरण होता है ऐसी कल्पना नही की जा सकती। अतएव रजतत्वका आरोप शुक्तिमे न होनेसे रजतत्वका वैशिष्ट्य रजतमेही विषय किया जाता है। सुतरां रजतत्वविशिष्ट रजतमेही प्रवृत्ति होती है। तात्पर्य यह है कि भ्रमस्थलमे रजतार्थिकी प्रवृत्ति शुक्तिमे नही होती किंतु रजतमे होती है। रजतत्वरूपमे जिसको जाना उसीमेही प्रवृत्ति होती है। रजतत्व शुक्तिमे जान नही सकता है क्योंकि वह (रजतत्व) स्वतंत्ररूपसे उपस्थित नहीं हो सकता है क्योंकि वह गौण है अर्थात् वह रजत-उपस्थितिमे प्रकार (विशेषण) होता है। रजतत्व सदाही रजतके विशेषणरूपसे प्रतिभात होताहै। स्वतंत्ररूपसे जो उपस्थित होता है वही आरोपित होता है। रजतत्व स्वतंत्ररूपमे उपस्थित नहीं है। उसकी स्वतंत्ररूपसे भ्रमके पहिले उपस्थिति होती है इस विषयमे प्रमाण नही है। अतएव प्रवृत्तिके उपपत्तिके लिये रजतका अभेदही शुक्तिमे जानना होगा। यह तभी हो सके यदि उसमे रजतकी उत्पत्ति हो।

पूर्वपक्ष–रजतज्ञान शुक्तिकोभी विषय करता है।

सिद्धान्त–अन्याकारज्ञान अन्यालंबन होताहै यह ज्ञानविरुद्ध है ।

इस प्रकारसे असत् वैशिष्ट्य की (शुक्तिमे देशान्तरीय रजतत्वका वैशिष्ट्य असत् है) अपरोक्ष प्रतीति अनुपपन्न है। इस स्थलमे अपरोक्ष ज्ञानका जो विषय है वह देशान्तरमे रहता है इस विषयमे कोई प्रमाणभी नही है । दोषवशसे देशान्तर-स्थित व्यक्तिही प्रतिभात होती है ऐसा कहना संगत नही है । दोप जैसा भ्रम उत्पादन करता है वैसे ही उसका विषयकीभी उत्पादन करेगा । इस स्थलमे वस्तुसाधक प्रतीति विद्यमान है ।

(३) बाध-बोध और प्रवृत्ति के विचारद्वारा अन्यथाख्याति खण्डित होनेके पश्चात् अब बाधके विचारद्वाराभी उसको खण्डित करते है । शुक्तित्व-विशेष दर्शनानंतर " यह रजत नही " ऐसी अन्योन्याभावबुद्धि होती है वैधर्म्यज्ञानसेही अन्योन्याभावबुद्धि उदित होती है । अभेदका निषेधही अन्योन्याभाव पदवाच्य है । ' यह रजत नही ' ऐसा निषेधज्ञान द्वारा जाना जाता कि इस निषेधके पहिले उस शुक्तिदेशमे रजतका आरोप हुआथा । यदि रजतत्वका संसर्ग आरोपित होता तो शुक्तिके ज्ञानानंतर ऐसा बोध होता कि इसस्थलमे रजतत्व नही है । ऐसा बोध होता नही, किंतु एतादृश ज्ञान होता है कि यह रजत नही है । इससे जाना जाता है कि शुक्तिदेशमे रजतत्वका भ्रम नही होता किन्तु रजतका भ्रम होता है । यदि भ्रमकालमे इदं पदार्थमे रजतका तादात्म्य प्रतिभात न होता तो " नेदं रजतं " यह बाध निर्विषय होगा । रजत आरोपित नही होता किन्तु रजताभेद आरोपित होता है ऐसा वचनभी संगत नही है । रजत आरोपित न होकर रजताभेद आरोपित होनेसे भ्रमकालमे एसी बुद्धि उदित होगी कि सन्मुख

देशमे रजताभेद प्रतिभात हो रहा है। एतादृश बुद्धि नही होती किंतु 'यह रजत' ऐसा ज्ञान होता है। इससे अवगत होता है कि शुक्तिदेशमे रजताभेद का नही किंतु रजतकाही आरोप हुआथा। बाध द्वाराभी यहा जाना जाता है। यदि रजताभेद आरोपित होता तो एतादृश बाधबुद्धि होती कि रजताभेद सन्मुख शुक्तिदेशमे विद्यमान नही है। अतएव सिद्ध हुआ कि शुक्तिदेशमे रजतत्व या रजताभेदका नहीं किंतु रजतका भ्रम होता है। औरभी रजताभेदका अर्थ रजतभेदका अभाव अर्थात् रजत है। अतएव रजतही आरोपित होता है, यह कहना होगा; रजतका संसर्गमात्र आरोपित नही होता। ऐसा होनेसे ऐसा बाध होता कि इसस्थलमे रजत नही परंतु यह रजत नहीं ऐसा बाध होता है। किंच पूर्वपक्षके मतानुसर विषयका अन्यत्र अस्तित्व रहनेसे उसका बाध उपपन्न नही है। उक्त विषयका वैशिष्ट्यही (शुक्तिमे रजतका वैशिष्ट्य) बाधप्राप्त होता है ऐसा कहा नहीं जा सकता क्योंकि रजत देशान्तरस्थ होनेसे उक्त वैशिष्ट्य असत् है। असत् होनेसे उसका बाध संभव नहीं है। औरभी 'नेदं' ऐसे बाधसे इसस्थलमे अस्तित्वमात्र प्रतीत होता है, अन्यत्र सत्व अनुभूत नही होता। विप्रकृष्ट रजतका पुरोवर्तितरूपसे ग्रहण स्वीकार करनेसे बाधकालमे "वहांपर रजत है, इसस्थलमे नहीं" एतादृश आकार होना उचित है। किन्तु ऐसा अनुभव नही होता। अतएव अनुभवके अनुसार स्वीकार करना होगा कि देशान्तरस्थ रजतकी प्रतीति नहीं होती।

उल्लिखित विचारद्वारा सिद्ध हुआ कि अन्यथाख्याति समी-

चन नहीं है। अन्यरूपसे अन्यका प्रतिभासन युक्त नहीं है, अन्यथा अतिप्रसंग होगा, सर्व ज्ञानही सर्व-विषयक हो जायगा। उससे प्रति-नियतार्थ व्यवस्थाका उच्छेद होगा। "यन्न ख्याति न तत्ख्याति यत्ख्याति न तदन्यथा"। (९)

ञ–अनिर्वचनीयख्याति मण्डन

शुक्तिरजतस्थलमें रजतका असत्व, उसका अधिष्ठानमें सत्व, तथा उसका देशान्तरमें सत्व, उपपन्न नहीं हुआ अतएव शुक्तिकामें उक्त रजत उत्पन्न होता है ऐसा स्वीकार करना होगा। विषय उत्पन्न होनेसेहि उक्त रजतादिविशिष्ट प्रतीति सूपपन्न होती है, अन्यथा नहीं। अर्थगत वैशिष्ट्य न रहनेसे बुद्धिगत वैशिष्ट्य नहीं होता। असत्का अनवभासन (अविषयत्व) होनेसे, आन्तर रजत निराकृत होनेसे, बाधके अनुपपत्तिसे, पुरोवस्थित बाह्य पारमार्थिक (व्यावहारिक) रजतका विषयत्व अयुक्त होनेसे, देशान्तरीय रजत व्यवहित होनेके कारण उसका विषयत्व संभव न होनेसे, इनसब हेतुबलसे परिशेषतः तत्कालोत्पन्न प्रतिभासिक

(9) (a) Whenever a penny looks to me elliptical ..if, in fact, nothing elliptical is before my mind, it is very hard to understand why the penny should seem elliptical rather than of any other shape

(Broad's "Scientific Thought)

(b) The stick which is really straight really presents the appearance of being bent, it does not merely appear to appear bent, it really appears so.

(Stout's "Error")

रजतही विषय होता है यह मानना होगा। निर्विषयज्ञान उत्पन्न होता नही "निराकारत्वापत्तेः"। भ्रमज्ञान सालम्बन होता अन्यथा भ्रमोदयकी अनन्तर पुरोस्थित विषयके प्रति धावन या वहासे पलायन उपपन्न नही है। जो वस्तु संश्लिष्ट होकर जिस रूपसे जिसज्ञानद्वारा विषयीकृत होती है वह उसको वैसाही स्वीकार करना उचित है। प्रतीति-निर्वाहानुरोधसे स्वीकृत पदार्थ उस प्रतीतिके पहिले सत् नही हो सकता है। प्रतीति समका लीन होनेसे उसको *प्रातिभासिक या प्रातीतिक* कहते है। "प्रातीतिक" शब्दसे प्रतीति-जन्यत्व अर्थ नही किंतु प्रातीतिकाल व्यातिरिक्त अन्यकालमे असत्व ज्ञापित होता। 'इद रजत' ऐसे *प्रत्ययानुरोधसे बाधज्ञान-निरसन-योग्य प्रतिभासमानकालीन मिथ्या* रजत अंगीकार करना होगा। ज्ञान प्रवृत्तिहेतु होता है। शुक्ति-रजतस्थलमे रजतार्थिकी पुरोवर्ती प्रवृत्तिकी अन्यथा उपपत्ति न होनेसे पुरोवर्ति-विशिष्ट रजतज्ञान स्वीकार्य है। वह पुरोवर्तिमे मिथ्या रजत विना अनुपपन्न है। *साक्षात्व-अनुरोधसे और प्रवृत्ति-अनुरोधसे* अपरोक्षस्थलमे अर्थकी उत्पत्ति स्वीकार्य है।

रजतभ्रान्ति निवृत्त होनेसे सब लोगोंकोंहि इस प्रकार अनुभव होता है कि यथार्थ ज्ञान होनेके पहिले मिथ्या रजतही प्रतीत हुआथा। इस प्रकारसे सबनेही *रजत और रजतज्ञानके मिथ्या-त्वको* मानस प्रत्यक्षका विषय *किया* है। ज्ञान दोषजन्य होनेसे और मिथ्या-ज्ञान-की प्रसिद्धि होनेसे मिथ्या रजतही आलम्बन होता है, सत्य नही। बाध होनेसेभी वह सत्यरूप्य-विलक्षण है। 'नेद रजत' ऐसा बाधज्ञान प्रतिपन्नोपाधिमे (शुक्तिरूपअधि-

स्थानमे) रजतके अभाव--प्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्वको विषय करता है। ऐसा अभावज्ञान होनेसे उक्त रजत निवर्तित होता है। अभाव-विशिष्ट ज्ञानके निवर्तकत्वस्थलमे निवर्त्त्यका मिथ्यात्वही प्रयोजक होता है, अन्यथा तत्कालमे तदभाववीशिष्ट प्रमा असंभव है। अतएव रूप्यके ख्याति और बाधसे अवगत होता है कि जो सत्य नही वह भी प्रतीत होता है। असत्-विलक्षण होनेसे प्रतीत होता है और सद्विलक्षण होनेसे बाध होता है। सत् यदि प्रतिभात होगा तो कैसे बाध हो सकता है ! और यदि प्रतिभात होगा तो कैस असत् होगा ? अतएव वह रजत अनिर्वचनीय या मिथ्या है। रजतका सत्व या असत्व, आन्तरत्व देशान्तरीत्व निराकृत होनेसे उसका मिथ्यात्व स्वीकार्य है। सुतरां सिद्ध हुआ कि शुक्तिरजत निर्दोष व्यक्ति कर्तृक अगृहीत होनेसे तथा " इस स्थलमे रजत नही " ऐसे बाधसे तथा " मिथ्या रजत प्रतिभात हुआथा" ऐसे परामर्शसे, रजतका मिथ्यात्व स्वीकार्य है। यह जो मिथ्यात्व है वह रजतज्ञान द्वारा प्रकाशित नही होता किंतु परवार्ति बाधज्ञान और अनुपपत्तिज्ञान (यहांपर रजत रह नही सकता ऐसी ज्ञान) द्वारा साधित होता है (१०)

---

(१०) तस्मात् इद रजत इति प्रत्ययानुरोधात् बाधकज्ञानानिरसनयोग्य प्रतिभासमानकालीनं मिथ्यारजत अगीकर्तव्य बाधकप्रत्ययानुरोधाच्च त्रैकालिकरजताभाव: तथाचानुभन नास्त्यत्र रजत मिथ्यैव रजत अभात् इति ।

(बोधेन्द्र सममीकृत अद्वैतभूषण=पन्चपादिकाविवरण-सग्रह—अमुद्रित)

(ख) नास्त्यत्र रजतं इति कालत्रयेऽपि रजतस्यासत्यमेव गम्यते मिथ्येव रजतमभात् इति भ्रान्तिसमये रजतस्य विद्यमानतावसीयते तेः

शुक्तिरजत जैसा मिथ्या है वैसाहि उसका संबंधमी मिथ्या है। 'यह रजत है' ऐसा भान होनेसे प्रतिभासानुरूप मिथ्यारजत और उसका तादात्म्य पुरोवर्ति अधिष्ठानमे मानना होगा। शुक्तिज्ञानके उत्तरकालमे 'नेदं रजतं' ऐसे बाधका बाध्य इदंपदार्थगत रजततादात्म्य होता है। भ्रमकालमे इद पदार्थमे रजतका तादात्म्य भान न होनेसे बाध निर्विषय होगा। पक्षान्तरमे केवल रजतत्वका समवायही शुक्तिमे प्रतिभात होता है ऐसा कहनेसे 'नात्ररजतत्वं' ऐसा बाध होना उचित है। सुतरां शुक्तिमे रजतका तादात्म्यही भासमान होता है। इस शुक्तिका तादात्म्य उभयसापेक्ष है, अन्यत्र प्रसिद्ध नहीं। इस रीतिसे अनिर्वचनीय तादात्म्य की उत्पत्ति आवश्यक है (११)। इदं और रजत इन दोके संसर्गरूपसे प्रतीयमान जो तादात्म्य

उभयसंविदनुरोधात् कालत्रयनिषेधस्य परमार्थरजतविषयत्वं शुक्तिअज्ञानविवर्तं पुरोवर्ति रजतविषयत्वन भ्रान्तिकालीन रजतविद्यमानतानुभवस्य कल्पनीय

(चित्सुखाचार्य विरचित विवरणभावद्योतनिका—अमुद्रित)

(ग) व्यावहारिक रजताभाव एव नेदं रजत इत्युल्लिख्यते नच पारमार्थिकस्याप्रसक्तिर्दोषः तस्यभ्रमाविषयत्वेऽपि अधिष्ठानसाक्षात्कारानन्तरं स्मृत्युपस्थितस्य निषेधोपपत्तेः प्रतियोगिज्ञानांशस्यादभानदुष्टः। तत्स्मारकं चाधिष्ठानज्ञानमेव।

(मधुसूदन सरस्वती प्रणीत अद्वैतरत्नरक्षणं)

(११) वेदान्तिमते रजतत्वतत्समवाययोः मिथ्यात्वात्, अन्यथाख्यातौच संसर्गस्यासत्वात् रजतस्य देशान्तरस्थत्वात् संसर्गानुपपत्तिः।

(आनन्दपूर्ण विद्यासागरकृत टीकारत्न=विवरणव्याख्या-अमुद्रित)

उसकी सद्रूपता हो नही सकती क्योंकि शुक्ति रजतरूप नही है। इसस्थलमे प्रतीयमान जो रजत उसका तादात्म्य अर्थात् उभय निरूपितत्वरूपसे प्रतीयमान तादात्म्य अन्यत्र है इस विषयमे प्रमाण नही है। यदि अपूर्व समवायत्वादि अथवा रजतके धर्म रजतत्वादि इन उभयकी उत्पत्ति अंगीकार करोगे तो सर्वानुभूत समवायत्वादि धर्म विशिष्ट संबंधसे रजतत्वादि विशेषण विशिष्ट वस्तुके इच्छावानके तथा पूर्वानुभूत रजतत्व विशिष्ट इच्छावान पुरुषके भ्रमस्थलमे प्रवृत्ति नही होगी (१२) यदि उभयका (पूर्वानुभूत समवायत्व और रजतत्व तथा एतद्कालानुभूत समवायत्व और रजतत्वका)ऐक्य मानोगे तो अनिर्वचनीयता सिद्ध होगी। अतएव शुक्तिरजतका *मिथ्या तादात्म्य(आध्यासिक तादात्म्य संबंध)*स्वीकार्य है। उक्त दृष्टांत अनुसार सकल भ्रान्ति स्थल विदित होना। (१३)

---

(१२) अपूर्वस्य समवायत्वादेः रजतत्वादेर्वा धर्मस्योत्पत्त्यंगीकार पूर्वानुभूत समवायत्वादि विशिष्ट संबंधेन रजतत्वादि विशेषणविशिष्ट पूर्वानुभूत राजतत्वादि विशिष्टमवच्छता भ्रमस्थल प्रवृत्त्यनुपपत्त।

(अनिर्वचनीयवादार्थ अमुद्रित)

(१३) कादाचित्क शुक्तिरजतादि भ्रान्तिद्वयका और तत्समकालमे उत्पन्न भ्रान्तिज्ञानका उपादानकारण (परिणामि और विवर्तोपादान) का विचार ग्रंथविस्तारभयसे कीया नही।

यस्मात् भ्रान्तित्व व्यवहार सदसद्ज्ञानयोरनुपपत्ता, यतश्चपक्षान्तरेषु अनुभवविरोध यतश्च ज्ञानद्वय पाराक्ष्य स्मृतित्व-स्मरणाभिमानप्रमाप तद्हेतुरनिरूप तन्निमित्तप्रवृत्तया जन्मान्तरानुभूतस्मृतिश्च इति अप्रतिपक्षमपूर्व बहुकल्पनीय अख्याती, अन्यथाख्यातीच अन्यत्र प्रतिपन्नस्य अन्यत्र सत्व इन्द्रियस्यच जन्मान्तरानुभूतदेशकालान्यवहितार्थग्राहित्व, दोषस्य च तथाविधा

अ–मिथ्या पदार्थका परिचयः—

उल्लिखित विचारद्वारा मिथ्या पदार्थका परिचय पाया गया। औरभी इस विषयमे वक्तव्य है। इस स्पष्टीकरणद्वारा परवर्ति अध्यायका विचार्य विषय सुबोध होगा। शुक्तिरजतादि भ्रान्ति-दृश्यको मिथ्या कहनेसे हेतु यह है कि, वह स्वतंत्र अस्तित्व-वान नहीं है, किंतु परतंत्र है। उनका अस्तित्व यदि स्वतंत्र हो तो वो सत्य होगा मिथ्या नहीं होगा। परतंत्रका अर्थ जो अपर सत्तासे सत्तावान है। अपर सत्तासे सत्तावान न होनेसे उसका परतंत्ररूपसे निर्देश नहीं किया जा सकता। उस पर-तंत्र पदार्थका अस्तित्व यदि उस अपरसत्ताके सम हो तो वह परतंत्र नहीं होगा। वह भी उस अपरके समान हो जायगा। ऐसा होनेसे स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य का भेद नहीं रहेगा। अतएव वोही परतंत्र होता है जो अधिष्ठानके सत्तासे वि+सम सत्तावान् होता है। अतएव परतंत्रका लक्षण यही है कि जो असत् नहीं किंतु सत् है; यह सत्ता स्वतःसिद्धिरूप नहीं है किन्तु अपर सत्तासे सत्तावान अथच उस अपर सत्ताके समसत्ताक नहीं किन्तु विषम सत्ताक है। शुक्तिरजतादि भ्रान्तिदृश्य परतंत्र है क्योंकि वे असत् नहीं (शुक्तिआदि अधिष्ठानमे अपरोक्षरूपसे भासमान्

दृष्टसामर्थ्ये, ससर्गस्य च शून्यस्य प्रत्यक्षता इति प्रमाणनिरुद्ध बहुकल्पनीय अतः सर्वदोषपरिहाराय यथाप्रतिपन्नस्य मिथ्यात्व नामैकः स्वभावो "नास्ति रजत मिथ्यैव रजतमभात्" इत्यनुभवसिद्धः समाश्रयनीयो, अविद्योपादान-कल्पनायाश्च अन्वयव्यतिरेकसिद्धत्वात्।...सत्यस्य वस्तुनो मिथ्यावस्तुसंभे-दावभासमानो मायामिथ्याऽनिर्वचनीयख्यातिरध्यास एवायम्

(पञ्चपादिका-विवरण)

रजतादिका स्वरूपत. असत्य नही हो सकता) (१४) वे स्वतः सिद्धमी नहीं (वे शुक्त्यादि अधिष्ठानके सत्तासे सत्तावान होता है) अथच अधिष्ठानके समान उनकी सत्ता नही है । अतएव वे अधिष्ठानके विषमसत्ताक होते हैं । प्रतीतिमात्रस्वरूप भ्रान्तिदृश्य व्यवहारकालमे बाधित होनेसे व्यावहारिक नही किन्तु प्रातिभासिक है । भ्रान्तिकी सत्ता और अपर जाग्रत पदार्थ की सत्ता यदि पृथक (सर्वथा स्वतंत्र नही) न होती तो भ्रान्तिही अप्रसिद्ध होती और उसका उच्छेद भी न होता । ज्ञानके पहिले व्यावहारिक पदार्थ अज्ञात रहता है । भ्रान्तिदृश्य अज्ञात नही रहता, वह प्रतीतिकालमेंही अवस्थित होता है । प्रातिभासिक पदार्थके पहिले अधिष्ठानकी सत्ता विद्यमान है । प्रतिभासकालमे और प्रातिभासिक पदार्थके निवृत्ति-कालमेंभी उस अधिष्ठान की सत्ता रहती है । प्रमा और भ्रमात्मक ज्ञानका विषय भिन्न होता है । व्यावहारिक पदार्थ (यथार्थ ज्ञानका विषय) द्वारा अनुगत होकर प्रातिभासिक पदार्थ की प्रतीति होती है ; यथा इदमंश (व्यावहारिक) द्वारा अनुगत होकर प्रातिभासिक रजतादिकी इदं रजत एतादृश प्रतीती होती है, उन रजतादिका पृथक स्वतंत्र अस्तित्व नही रहता । पहिले अनिर्वचनीय ख्यातिस्थलमे अनिर्वचनीय पदार्थके उत्पत्ति प्रतिपादन द्वारा यह विषय निर्णीत हुआ है।

(१४) जो असत् अर्थात् जो यो कोइ धर्मीमे सत्यप्रकारक प्रतीतिका विषय नहीं होता यह अपरोक्षरूपसे प्रतीत नही होता अर्थात् प्रत्यक्ष प्रतीतिका विषय नही होता। इसस्थलमे प्रत्यक्ष प्रतीतिका अविषय आपाद्य है और सत्यप्रकारक प्रतीतिका अविषय आपादक है।

जो जहांपर अनारोपित है वह उसका समसताक होता है। उक्त स्थलमें सत्ता उन सम नहीं है और उसको संज्ञा देना हो तो कहा जा सकता है कि एककी सत्ता अधिक है और अपरकी न्यून है। अतएव प्राप्त हुआ कि अधिष्ठानका विषमसत्ताक अवभासही होना यही परतंत्रका परिचय है और यही मिथ्यात्वका लक्षण है। (१५) ऐसे परतंत्र अवभासकोही अद्वैत वेदान्त शास्त्रमें मिथ्या कहते है। यदि अधिष्ठान सत्ता न रहे तो अध्यस्त प्रतिमासको स्वत सत्तावान या असत् कहना होगा। स्वत सत्तावान होनेसे उसकी सत्यत्वापत्ति होगी और वह मिथ्या नहीं होगा। वह असत्‌भी नहीं है। असत् होनेसे उक्त प्रतिमासही सम्भव होना अशक्य था। (१६) असत् होनेसे पृथकत्व-धर्मका अनाश्रय होनेके कारण उसको मिथ्यारूपसे अभिहित नहीं किया जा सकता। मिथ्या वस्तुकाभी सत्यसे पृथक्त्व धर्मका योग होनेसे अतुच्छरूप सत्यत्व प्रसक्त होगा। अतएव जो पदार्थ मिथ्या होता है वह असत् या स्वतःसिद्ध नहीं है। उसकी कोई प्रकार सत्ता

---

(१५) अधिष्ठान अपरोक्षतया भासमानस्य स्वरूपतोऽसत्त्वायोगात् अधिष्ठानस्य तादृश सत्त्व तादृश सत्त्वराहित्य प्रतिपादित अधिष्ठानविषमसत्ताक समानत्व लक्षण पर्यवस्यति। . . लक्षणे सत्ताशब्देन तात्त्वादिकत् उत्कर्ष विवक्षात्मको वचनागण्डापाधिकत्वूना विवक्षिता: (ब्रह्मविद्याभरण = ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्यव्याख्या)

(16) (a) They must exist in order to be false.
(Bosanquet's "Essentials of Logic")

(b) To hold that appearances have no reality is to deny that they are appearances.
(Eaton's "Symbolism and Truth.")

रहना आवश्यक है। उसकी सत्ता यदि अधिष्ठान-सत्तासे स्वतंत्र पृथक् हो तो उसका कभीभी बाध नहीं होगा, वह अधिष्ठान का प्रतिभासरूप है ऐसाभी निश्चय नहीं होगा, उसको मिथ्या-रूपसे भी अभिहित कर नहीं सकते। उसकी सत्ता यदि अधिष्ठान रूपही हो तो वह मिथ्या पदवाच्य नहीं होगा। सत्य-अभिन्न मिथ्या नहीं हो सकता। मिथ्या यदि सत्य-अभिन्न हो तो तदभिन्न सत्यकी भी मृषात्व प्राप्ति होगी। वह यदि अधिष्ठानरूप हो तो भ्रान्तिप्रतिभास असत् होगा। उसकी सत्ता यदि अधिष्ठानके समसत्ताक हो तो उसको मिथ्या नहीं कहा जायगा, उसका अधिष्ठानही (यद्गतं प्रतिभास्यं तदधिष्ठानं) अप्रसिद्ध होगा, जगतमें भ्रम और बाधकी व्यवस्था नहीं रहेगी। अतएव सिद्ध हुआ कि वही मिथ्या होता है जो स्वतः सिद्ध या असत् नहीं, जिसका अस्तित्व अधिष्ठानसत्तासे स्वरूपतः पृथक न होनेसेभी मानो पृथकरूपसे (न्यून सत्ताक रूपसे) प्रतिभात होता है। वह यदि सत्य (अधिष्ठानसे) पृथक् हो तो वह सत्यही हो जायगा अन्यथा तात्विक भेदका आश्रय नहीं होगा, पृथक होनेसे उन्होंका तादात्म्यभी उपपन्न नहीं होगा। अतएव अधिकसत्ताक अधिष्ठानमें (अर्थात् उससत्तासे सत्तावान होकर) न्यूनसत्ताक प्रतिभास ही मिथ्या होता है। इसीको अध्यास कहा जाता है। अधिष्ठानमें अध्यस्त पदार्थ स्वरूपतः नहीं रहता अतएव अधिष्ठान उसका अत्यंताभाव-युक्त होता है। अधिष्ठान और अध्यस्त की समसत्ताक नहीं होती किंतु विषम सत्ताही स्वभाव होता है।

अधिष्ठानका असमानसत्ताक प्रतिभासही (मिथ्या पदार्थही) अधिष्ठानसे भिन्नरूपसे या अभिन्नरूपसे या भिन्नाभिन्नरूपसे निर्वचनीय नही है। ऐसा मिथ्या पदार्थ सत् या असत् या सदसन् नहीं होता। वह सद्विलक्षण, असद्विलक्षण, सदसदुभयविलक्षण होताहै।

पूर्वपक्षी—एकका सदसदात्मकत्व जैसा विरूद्ध है वैसा तद्विलक्षणत्व भी विरूद्ध है।

सिद्धांत—सद्विलक्षणत्व और असद्विलक्षणत्व यह जो दो धर्म है वो विरूद्ध होनेसे भी इनका मिथ्या तादात्म्य उपपन्न होता है। तात्पर्य यह है कि सद्विलक्षणत्व और असद्विलक्षणत्व यह जो दो पदार्थ है इनका मिथ्या तादात्म्य मान्य होनेसे एकका सदसद्विलक्षणत्वरूप अनिर्वचनीयत्व हो सकेगा। सदसद्वादीके मतमे उक्त उभय पदार्थ वास्तव होनेसे उनका तादात्म्य सत्य होगा। अतएव विरोध होगा।

पूर्वपक्ष—(सदसद्वादी) मे भी सत् और असत्का मृषा तादात्म्य स्वीकार करूंगा।

सिद्धांत—मृषा शब्दका अर्थही 'अनिर्वचनीय' है। अतएव सदसद्विलक्षणत्वरूप अनिर्वचनीयत्व सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि यदि तुम मृषा मानोगे तो मृषा तादात्म्यही सत् या असत् न होनेसे सदसद्विलक्षणत्वरूप अनिर्वचनीयत्व सिद्ध हो जायगा।

सदसद्विलक्षणत्व केवल सत् या केवल असत् या सदसद्रूपसे अनिर्वचनीय होता है। यह जो उभय वैलक्षण्य है वह तात्विक नही है। तात्विक होनेसे विरोध होगा। यह जो कहा गया

'विलक्षण' इसका तात्पर्य यह नही कि उस पदार्थका 'वैलक्षण्य' पारमार्थिक धर्म है। परंतु वो धर्म युक्तिसिद्ध है यह प्रगट करनेके लिये ऐसा कहा गया है। आरोपणीय पदार्थ स्वरुपतःही अतात्त्विक होनेसे उसका कोई तात्त्विक धर्म (सदसद्विलक्षणत्वादि) नही हो सकता। (१७)

(१७) आरोप्यस्य रूप्यादेःसदसदात्मकत्वे न भ्रान्तिबाधौ स्यातां, द्वयोरपि यथार्थत्वात् ।.. सत्त्वानधिकरणत्वे सति असत्त्वानधिकरणत्वे सति सदसत्त्वानधिकरण अनिर्वाच्यत्व-इति निर्वचनं पर्यवस्यति ।... न तु सत्त्वादिवैलक्षण्यस्य तात्त्विकत्व अभिप्रयते, अतात्त्विकस्य तात्त्विकधर्मवत्त्वासम्भवात् ।

(आनन्दज्ञानविरचित तर्कसंग्रह)

पंचम अध्याय
सिद्धान्त निरूपण

(क) केवलाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपादनके प्रकार :—

केवलाद्वैत सिद्धान्त प्रतिपाद्य होनेसे यह प्रदर्शित होना आवश्यक है कि द्वैत प्रपंच एकके अन्तर्गत है। तदनंतर द्वैतका मिथ्यात्व सिद्ध करना प्रयोजन है। पूर्वविचारानुसार ज्ञान और ज्ञेय, द्रष्टा और दृश्य, ऐसा पदार्थ स्वीकृत होनेसे भी द्वैतसिद्धि या बहुत्वसिद्धि नही होती है, क्योंकि ज्ञेय पदार्थ ज्ञानके अधीन है। जो जिसके अधीन होता है वह पदार्थ जिसके अधीन है उस सत्ताका भेदक या परिच्छेदक नही होता। ज्ञेय पदार्थ, सत्ता और भान के लिये, ज्ञानके अधीन होनेसे तथा वह ज्ञान क्रिया-रूप न होनेके कारण उसका निराश्रयत्व सिद्ध होनेसे तथा उसकी सर्वानुस्यूतता प्रतिपादित होनेसे ज्ञानका अद्वैतत्व सिद्ध होता है।(१) अब ज्ञेयका मिथ्यात्व सिद्ध होनेसेही केवलाद्वैत-सिद्धान्त प्रतिष्ठित होगा।

(ख) पदार्थ विभागः—

पदार्थ द्विविध है, ज्ञान और ज्ञेय। ऐसे विभागकी समीचीनता प्रतिपन्न है, क्योंकि उससे न्यून या अधिक, विचारमें नही आसकता। उससे न्यून होनेसे जगत्‌की अप्रसिद्धि होगी। अधिकभी

(१) न हि ज्ञानं ज्ञानान्तरमविषयीकृत्य ततः स्वस्य भेदं विषयीकर्तुं शक्नोति, न वा ज्ञानं ज्ञानान्तरम् विषयीकर्तुं विषयस्य जडत्वापत्तेर्विषयविषयिणोर्वस्तुनः सम्बन्धासम्भवाच्च। विषयाणि सत्यं कल्पितत्वेन निरस्तं ज्ञानमिति न ज्ञानभेदसिद्धिरतश्चिद्रूपस्य प्रतीचश्चिद्रूप अज्ञता नित्यसिद्धेत्यागय।

(अद्वैतसिद्धि मधुसूदन टीका)

नहीं है । अशेप पदार्थ उसीकेही अन्तर्गत है, एतदतिरिक्त नही हो सकता, अन्यथा तुच्छता होगी । ज्ञान स्वप्रकाश होनेसे किसीकाभी आश्रित नहीं है । अतएव ज्ञानही ज्ञेयसंबंधसे ज्ञातारूपसे उपचरित होता है । नित्य उपलब्धि मात्र ही उपलब्धा है; अन्य उपलब्धि, अन्यउपलब्धा, ऐसा नहीं है ।

(ग) वेदान्त शास्त्रकी विचारप्रणालीः—

वेदान्तशास्त्रने ज्ञानके दिकसे ज्ञेयका विचार किया जाता है क्योंकि ज्ञानही ज्ञेयका सिद्धिप्रद है, ज्ञेयपदार्थ स्वतःसिद्ध ज्ञानके अधीन है, उसके साथ तादात्म्य-प्राप्त है । जडपदार्थको ज्ञानव्यतिरिक्त-रूपसे विवेचन करनेसे उसको स्वतंत्र कहना पडेगा, अथवा ज्ञान स्वस्वरूप परित्यागपूर्वक सर्वथा ज्ञेयरूपसे परिणत है ऐसा मानना होगा । परंतु यह दोनों पक्ष असंगत है । अतएव ज्ञानके दिकसे ज्ञेयका विचार करना होगा ।

(घ) ज्ञेयप्रपंच मिथ्या है क्योंकि वह सद्भिन्न चिद्भिन्न हैः—

स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश ज्ञानके दिकसे ज्ञेयका विचार करनेसे ज्ञेयको सत् कह नहीं सकते क्योंकि सत्स्वरूप स्वतःसिद्ध स्वप्रकाश है । इस सिद्धान्त-अनुसारसे ज्ञेय-प्रपंच सत् हो नहीं सकता । सर्वत्र अनुगत सद्बुद्धि-गोचर सद्व्यक्ति एक होनेसे विभक्त जडप्रपंचका सद्रूपत्व अयुक्त है । अतएव (प्रकारान्तरके अभावके कारण) वह असत् या मिथ्या होगा । वह असत् नहीं है । जो कहींपर सद्रूपसे प्रतीयमान नहीं होता वही असत् है । घटादि वा शुक्तिरूप्यादि सद्रूपसे प्रतीयमान होता इसलिये प्रतीयमानत्वका

अभाव नही है। सुतरां असत् नही कहा जाता। सद्रूप अधिष्ठानमे तादात्म्यसंबंधसे आरोपही, आरोपित वस्तुका सद्रूपसे प्रतीतियोग्य होनेका कारण है। जो सद्वस्तुमे आरोपित नही, और इसलिये जो सत्त्वरूपसे प्रतीत होनेका अयोग्य वही असत् है, यथा शशशृंगादि। कुर्मरोम, वंध्यापुत्र, खपुष्प, इत्यादि असद्विषयक शब्दज्ञानानुपाति वस्तुशून्य विकल्पात्मक ज्ञान या ज्ञानाभास होनेसेभी वह ज्ञेयरुपसे अपरोक्ष-गोचर नही होता है। विषय बिना शब्दादिद्वारा शक्यादिभ्रम होनेसे ऐसा ज्ञानविशेष उत्पन्न होता है। केवल शद्वप्रयोग और विकल्पज्ञान अलीक पदार्थका होता है। अलीक पदार्थद्वारा कोई व्यवहार संभव नही है। अलीक पदार्थमे कारणता, कार्यता, नित्यता, अनित्यत्वादि कोईभी व्यवहार नही होता। अतएव ज्ञेय प्रपंचको असत् नही कहा जा सकता। असत्के साथ असत्का किंवा सत्के साथ असत्का ऐसा ज्ञातृज्ञेय-संबंध नही होता। संबंध द्वयाश्रय होनेसे और असत्का आश्रयत्व अयुक्त होनेसे असत्का संबंध सिद्ध नही होता। संबंध द्विनिष्ठ होनेसे उक्त संबंधिद्वय सत् होगा ऐसा भी नही कहा जा सकता क्योंकि सत् एकमात्र है। अवशेष ज्ञेयप्रपंचको मिथ्या कहना होगा क्योंकि वह सद्विलं है। प्रपंचका अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु सद्रूप न होनेसेभी सर्व प्रपंचानुगत एक ब्रह्मका सद्रूपताके द्वाराही प्रपंचान्तर्गत प्रत्येक वस्तुकी सत्प्रतीति और सद्रूपसे व्यवहार उपपन्न हो सकता। सुतरां प्रपंचका सद्रूपतामे बाधक है इसलिये प्रपंचको सद्रूप नही कहा जाता।

(ङ) जगत् मिथ्या है क्योंकि वह सत्ता और भान के लिये सापेक्ष है:—

सत् स्वप्रकाशस्वरूप होनेसे सापेक्ष नही है, पर ज्ञेयप्रपंच

सापेक्ष है । ज्ञेय पदार्थ यदि सत् (सत्य) होगा तो वह सापेक्ष न होता । अथच सापेक्ष न होनेसे उसका ज्ञेयत्व ही अप्रसिद्ध होता है । अतएव सापेक्ष (सत्ता और भानके लिये सापेक्ष) होनेसे ज्ञेयप्रपंच सत् नही है । सत् निरपेक्षस्वरूप होनेसे सापेक्ष प्रपंच मिथ्या होगा ।

(च) जड प्रपंच मिथ्या है क्योंकि वह चेतनके साथ अयथार्थ तादात्म्य संबंधसे संबद्ध है:—

सर्व प्रपंचके धार्मिरूपसे सत्स्वरूप प्रतिपन्न होता है । सत् विशेष्यरूपसे प्रतिभात होता है, उसमे घटादिका तादात्म्य होता है। सच्चितादात्म्य-अभावसे दृश्यत्व अनुपपन्न है । विचारदृष्टिसे इस तादात्म्यको यथार्थ कहा जा नहीं सकता । सत् स्वप्रकाश ज्ञान-स्वरूप होनेसे, उसके साथ जडपदार्थका वास्तव तादात्म्य संभव नही है । जिस स्थलमे वास्तव तादात्म्य होता है वहांपर आधार परिणाम प्राप्त होता है । 'उपयन्नपयन् धर्मो विकरोतिहि धार्मिणम्' प्रकृतस्थलमे साक्षिरूप सच्चित्स्वरूप अपरिणामी होनेसे उसके साथ ज्ञेयप्रपंचका वास्तव तादात्म्य संभव नहीं है । अवशेष स्वप्रकाश अपरिणामी चेतनकेसाथ जडप्रपंचका आध्यासिक (अयथार्थ) तादात्म्य मानना होगा । ऐसा तादात्म्य भ्रान्तिस्थलमे प्रसिद्ध है। अनिर्वचनीय भ्रान्तिदृश्य और उसके अधिष्ठानका आध्यासिक तादात्म्य होता है । अध्यासिक तादात्म्यस्थलमे अधिष्ठान और अध्यस्त यह संबंधि-द्वय उभयही स्वरूपतःमिथ्या, किंवा उभयही सत्य नहीहोता परंतु एक (अधिष्ठान) सत्त्व होता है, अपरमिथ्या होता है । प्रकृतस्थलमे जड और चेतनके पृथक सत्व-विषयमे प्रमाण न रहनेसे उनमेसे

अन्यतर कल्पित होगा। अन्यतर कल्पना विना कल्पित-तादात्म्य या अध्यस्त-अधिष्ठान-भाव संभव नही है। चैतन्य यदि कल्पित हो, तो, जड होनेके कारण जगत्की अप्रसिद्धि हो जायगी। सर्वावधि स्वप्रकाशस्वरूप होनेसे सच्चित्स्वरूप मिथ्या नही है। व्यावृत्त सर्व वस्तुमे सत्त्वरूपसे सदा अनुवर्तमान होनेसे अधिष्ठान की परमार्थसत्यता प्रतिपन्न होती है। अवशेष जड प्रपंचको मिथ्या कहना होगा।

(छ) जगत् मिथ्या है क्योंकि वह अनिर्वचनीय है:—

घट.सन् इसस्थलमे सत्ता और घट भासित होते है। सत्ता और घट एक पदार्थ नही है। घटोत्पत्तिके पहिले सत्स्वरुप रहता है। घटविनाशसे सत्ताका विनाश नही होता। अतएव घटकी व्यभिचारी होनेसे सत्ता घटका धर्म नही है। पटःसन् इत्यादिस्थलमे सत्द्वारा पट अनुविद्ध प्रतीत होता है। ऐसे स्थलमे घट विषय नही है। इसमे घटका सद्विलक्षणत्व अवगत होता है। अनुभवसिद्ध होनेसे घट असत्भी नही है। अतएव घटका सदसद्विलक्षणत्वरूप अनिर्वचनीयत्व प्रतिपन्न होता है। यही मिथ्यात्व है। घट-दृष्टांत अनुसार अपर स्थलभी* विदित होना। व्यभिचारी पदार्थ मात्रही अनिर्वचनीय होता है। सत् या असत्का आगमापायित्व असंभव होनेसे उसका अनिर्वचनीयत्व आवश्यक है।

(ज) अनिर्वचनीयतासंबंधमे प्रत्यक्षप्रमाण प्रदर्शन:—

अनिर्वचनीयत्व-विषयमे प्रमाण नही है ऐसा नही। यह रजत (शुक्तिरजत) 'सन्' ऐसा प्रत्यक्षही अनिर्वचनीयत्वमे प्रमाण है। इस स्थलमे रजतस्वरुपही सत् नही है। सत् शब्द रजतके

पर्यायरूपसे प्रसिद्ध नहीं है। प्रपंचमात्रमें अनुगत सद्बुद्धिका रजत-विषयत्व उपपन्न नहीं है। सत्ता उस रजतका धर्मभी नहीं है। चैतन्य अतिरिक्त सत्तारूप धर्म है इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं है। सत्ता-जाति सर्वत्र असिद्ध कही गई है। वह सद्बुद्धि त्रैकालिक अस्तित्वको बोधन करती है ऐसाभी नहीं है। शुक्तिरजतादिका बाध प्रत्यक्षसिद्ध है। अवशेष कहना होगा कि अधिष्ठान-सत्के साथ तादात्म्यप्राप्त होकर 'रजतसत्' इत्यादि सर्व प्रत्यय होते हैं। अतः सदन्य पदार्थ प्रत्यक्षसिद्ध है। प्रत्यक्ष सिद्ध होनेसेही असत्सेभी अन्य है। अतएव पदार्थका सदसद्विलक्षणत्व प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्ध है।

इस स्थलमें यह प्रणिधानयोग्य है कि (१) सत्त्व और असत्त्व यदि परस्परविरहस्वरूप (सत्त्वका अभाव असत्त्व और असत्त्वका अभाव सत्त्व) किंवा (२) परस्परविरहव्यापकस्वरूप (परस्पर विरहका व्यापकता, सत्त्वाभावका व्यापक असत्त्व और असत्त्वाभावका व्यापक सत्त्व) हो तो सत् और असत् ऐसा विभागद्वय सिद्ध होगा, सदसद्विलक्षणरूप तृतीय विभाग नहीं सिद्ध होगा 'परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिः'। तात्पर्य यह है कि, सत् और असत् व्यतिरिक्त कोईभी वस्तु संभावित नहीं है क्योंकि सत्त्व और असत्त्व धर्मद्वय परस्परविरहस्वरूप या परस्परविरहव्यापकस्वरूप है। परंतु अद्वैतवेदांतसिद्धांत ऐसा नहीं है, इस मतानुसार तृतीय विभाग सिद्ध होता है।

(१) इस मतमें "त्रिकालाबाध्यत्व" सत्त्व है, इसका अभाव असत्त्व नहीं है क्योंकि शुक्तिरूप्यादिस्थलमें सत्त्वका अभाव रहने

सेभी असत्त्व नही है। असत्ख्याति पहिले खंडित किया। इसमतमे असत्व " क्वचिदपि उपाधौ सत्त्वेन प्रतीयमानत्वानाधिकरणत्वं "। जो कोईस्थलमेभी सद्रुपसे प्रतीयमान नही होता वही असत् है यथा शशशृंगआदि। अधिष्ठानसत्के साथ तादात्म्यरुपसे अप्रतीयमानत्वही असत्त्व है। व्यावहारिक प्रपंच और प्रातिभासिक पदार्थ सत् नही क्योंकि एकमात्र अधिष्ठानचैतन्यही सत् है। उक्त पदार्थ सद्रुपसे प्रतीत होनेको अयोग्यभी नही सुतरां असत्भी नही है। अतएव सदसद्विलक्षणरुप तृतीय विभाग सिद्ध होता है।

(२) सत्त्वाभावका व्यापक असत्त्व नही है। जिस जिस स्थलमे सत्त्वाभाव है उस स्थलमे असत्त्व है, यह यदि नियमितरूपसे सिद्ध हो तो व्यापक हो सकता। किन्तु सो सिद्ध नही होता। शुक्तिरजतमे सत्त्वका अभाव रहनेसेभी असत्त्व नही है क्योंकि वह सद्रुपसे प्रतीतही होता है। तात्पर्य यह है कि, सत्त्वाभाववत् शुक्तिरजतमे यदि असत्त्व रहता तो सत्त्वाभावका व्यापकता असत्त्वधर्ममे लब्ध होता। किन्तु सो नही है। ऐसाही असत्त्वाभावका व्यापक सत्त्व नही। सिद्धांतीकी अभिमत असत्त्वके अभावविशिष्ट जो शुक्तिरजत, उसमे सिद्धांतीकी अभिमत सत्त्वधर्म नही है इसलिये असत्त्वाभावका व्यापक सत्त्वधर्म नही है। सुतरां असत्त्वाभाव सत्त्वका व्याप्य (अव्यभिचारी) न होकर व्यभिचारी होता है। इसलिये व्याप्ति न रहनेके कारण व्याप्तिका निरूपकतारूप व्यापकताभी नही है। अतएव सत्त्व और असत्त्व परस्परका अत्यन्ताभावके व्यापक न होनेसे " परस्परविरोधे हि न प्रकारांतरस्थितिः " यह रीति प्रयुक्त नही होती। इसलिये सत्

और असन् इस मागद्वयव्यतिरिक्त आरोपित शुक्तिरजतादि तथा व्यावहारिक वियदादि वस्तु, प्रदर्शित सत् और असत्से विलक्षण (अनिर्वचनीय) है।

(ञ) जड़ और चेतनका परस्पर अध्यास निरूपण —

घटःसन् पट सन् इत्यादि प्रतीतिद्वारा घटादिका सत्यत्व कहा नहीं जा सकता क्योंकि ' सत् ' पदका अर्थ स्वप्रकाश है। घट सन् इत्यादि प्रत्यक्ष अधिष्ठानसत्ताविषयक होनेसे दृश्यसत्यत्वमे प्रमाण नहीं है। उस प्रतीतिद्वारा स्वप्रकाशमे घटादि आरोपित या कल्पित (आध्यासिक तादात्म्य प्राप्त) है यह अवगत होता है। अन्य स्वरूपके अन्यत्र भानका हेतु अन्यके साथ तादात्म्य-अध्यास होता है। उस अध्यासका अधिष्ठान सच्चित्स्वरूप होता है। जिसद्वारा अनुविद्ध होकर आरोपित पदार्थ प्रतिभात होता है वह अधिष्ठान होता है। घट.सन् स्थलमे सत्ता और भेद भासित होता है। अस्तित्व और भेद एक पदार्थ नही है। अतएव उभय व्यवहारके एकजातीय प्रत्यक्षविषयद्वारा एकका अधिष्ठानत्व और अपरका आरोपत्व अवगत होता है। सत्-अवच्छेदमे घटादिका और घटत्वादिका तादात्म्य तथा घटत्वादिका संसर्ग और घटादि- अवच्छेदमे सत्का तादात्म्य, सत्तादि धर्मका संसर्ग प्रतिभात होता है। अतएव इनका परस्पर अध्यास विद्यमान है यह जाना जाता है। जैसे आरोप्यके अधिष्ठान-सामान्यके साथ तादात्म्यानुभव होता है वैसेही उसकाभी आरोप्यके साथ तादात्म्या-

युगव है। यह ही इतरेतर अध्यासमें प्रमाण है। एकतरका अध्यास अंगीकार करनेसे अपरका स्फुरण नहीं हो सकता। अतएव परम्पराध्यास स्वीकार्य है। अथच सम्बन्ध पूर्व सिद्ध होनेसे इतरेतराश्रय दोष नहीं है। सुतरां सिद्ध हुआ कि, मायि प्रपंचमे नामरूपका संबंध और प्रपंचमे सदादिभाव परस्पर अध्यास जनित होता है। इतरेतराध्यासरूप सिद्धांतका तात्पर्य यह है कि, अधिष्ठानके तादात्म्यसंबंधसे आरोप होता है, उभयही परस्पर अधीन ऐसा अर्थ नहीं है। ऐसा हो तो उभयकी परस्पराधीन सिद्धि होनेसे उभय सिद्धि प्रसंग होगा। अधिष्ठानमें अध्यस्त भेदवता रहनेसेभी, अध्यस्तमें अधिष्ठान भेदका अभाव होता है। अतएव अन्यतर निरूपित तादात्म्य ग्रहणपूर्वक भी सामानाधिकरण्य प्रतीति उपपन्न होती है। यद्यपि चेतन और जडका परस्परमें परस्पर तादात्म्यास समानही है तथापि चेतनका संश्लिष्टरूपसेहि अध्यास (आत्मतादात्म्य संबंध मात्र अध्यास) होता है, स्वरूपत नहीं, अन्यथा निरधिष्ठान अमापत्ति होगी। अतएव चेतनका सत्यत्व होता है। जड-पदार्थका स्वरूपत अध्यास होता है। अतएव उसका अनृतत्व होता है। सुतरां जड पदार्थ स्वरूपत कल्पित है, चेतन संश्लिष्ट रूपसे कल्पित है, शुद्धरूपसे कल्पित नहीं है। (२)

---

(२) (क) आत्मानात्मनाश्चिदचितन यत्तनाभेदासिद्धौ सामानाधिकरण्यात् तद्भेदधीरध्यासम्भावना गमयति।

(चित्सुखाचार्यकृत ब्रह्मसूत्रभाष्य भावप्रकाशिका अमुद्रित)

(ख) मिथ्यात्व अध्यासविषयत्व अध्यासश्च तच्छून्य तदवभास तत्सम्बन्धिनि तद्प्रतीति।

(प्रपंचमिथ्यात्वभूषण अमुद्रित)

(ञ) जगत् मिथ्या है क्योंकि वह चेतनरूप अधिष्ठानमे न्यूनसत्ताक प्रतिभास है:—

पूर्वोक्त लक्षणानुसारभी प्रपंचको मिथ्या कहना होगा। भ्रान्ति-दृश्यको जिस हेतुसे मिथ्या कहा जाता है वह निरूपण करते है। उसकी स्वतन्त्र सत्ता नही है, वह जिस अधिष्ठानमे प्रतीत होता है उस अधिष्ठानके सत्तासे सत्तावान होकर प्रतिभात होता है। प्रतिभात होनेके लिये उसकाभी एक प्रकार अस्तित्व रहना आवश्यक है। अतएव जिसकी स्वतंत्र सत्ता नहीं है किन्तु अधिष्ठानसत्तासे सत्तावान होकर न्यून सत्तावानरूपसे प्रतिभात होता है वही मिथ्या होता है। यह व्यावहारिक विश्वप्रपंच स्वप्रकाश-स्वरूप नहीं है। अथच असत्भी नहीं है। एकमात्र स्वप्रकाश सत्स्वरूपके सत्तासे इसकी सत्ता है और असत् न होनेसे इसकी सत्ता उस अधिष्ठान सत्तासे विषम (न्यून) है क्योंकि केवल निरंश परिपूर्ण निर्विकार सत्तामे प्रपंचभाव संभव नहीं है। अतएव स्वतंत्र सत्तारहित व्यावहारिकप्रपंच साचित्स्वरूप अधिष्ठानसत्तासे सत्तावान अथच उस अधिष्ठानमे न्यून सत्तावान-रूपसे प्रतिभात है। यही मिथ्यात्वका लक्षण है। भ्रान्तिदृश्य मिथ्या है, क्योंकि वह व्यावहारिक अधिष्ठानसत्तासे सत्तावान होकर न्यून सत्ताक (प्रातीतिक या प्रातिभासिक) होता है। भ्रान्तिस्थलमे जैसे भ्रान्तिदृश्य तद्व्यतिरिक्त इदंरूपद्वारा अनुगत होकर प्रतिभात होता है वैसेही व्यावहारिक प्रपंचभी स्वव्यतिरिक्त साचित्स्वरूपद्वारा अनुगत होकर प्रतिभात है, वहभी (व्यावहारिक प्रपंचभी) पारमार्थिक चेतनके सत्तासे सत्तावान, उसकेही भानसे भासित

अथच न्यून-सत्ताक (व्यावहारिक) है (३) अतएव स्वप्रकाश सच्चित्स्वरुप पारमार्थिक अधिष्ठानमे व्यावहारिक सत्तावान जडप्रपंचका प्रतिभास मिथ्या है। घटादि वस्तु व्यावहारिकरुपसे रहनेसेभी पारमार्थिक रूपसे नहीं है सुतरां मिथ्या है। जिस संबधसे यद-वच्छेदसे जिस स्थानमे जो जिसरूपसे रहता है उस संबंधसे उस अवच्छेदसे उस स्थानमे पारमार्थिरूपसे उसका न रहनाही मिथ्यात्व है।

(ट) अनिर्वचनीयता प्रतिपादन :—

ऐसा प्रतिभासही अनिर्वचनीय होता है जो अधिष्ठनसे भि- या अभिन्न या भिन्नाभिन्नरूपसे निर्वचनीय नही है। वह सत् य असत् या सदसद्रूपसे निर्वचनार्ह नहीं होता। जड प्रपंच सत या असत्‌रूपसे निर्वचनीय नही है, यह पहिलेही प्रदर्शित किया है। उभयरूपसेभी वह निर्वचनार्ह नही है। एकमे सत्त्वासत्त्वरूप विरुद्ध धर्म असंभव है। सत्वासत्व उभयरूप होनेकेलिये उसको

(३) यद्यपि वेदांतमतमे चेतनस्वरूपही सबका सत्व है अतएव सत्व स्वरूपमे भेद नही है तथापि तत् तत् अविच्छिन्न चैतन्य तद् तद् सत्व होनेसे अवच्छेद स्वरूपका वैषम्यसे तत् तत् सत्वभी विलक्षण होता है सुतरा सत्ववैचित्र्य अनुपपन नही है।

" प्रातीतिक व्यवहारिक पारमार्थिक सत्ताना पूर्वापूर्वापेक्षया उत्तरोत्तरस्याधिक्य पल्लवावियावच्छिन्नं चैतन्यमाद्या मूलावियावच्छिन्न द्वितीया शुद्ध तत् तृतीया। अथवा अज्ञानविषयतावच्छेदकत्व द्वितीया शुद्धचिदन्यत्वे सति तदभाव आद्या। "

(अद्वैतचंद्रिका=अद्वैतसिद्धिव्याख्या-अमुद्रित)

वस्तुकास्वरूप या वस्तुका धर्म कहना होगा। परंतु उभय पक्षही संगत नही है। यदि सत्वासत्व वस्तुधर्म हो तो असत्वदशामेभी सत्वका अनुवृत्ति प्रसंग होगा, क्योंकि असत्वके समान सत्वकाभी वस्तुधर्मत्व माना गया है। आश्रय व्यतिरेकसे धर्म अवस्थित नही होता। अतएव असत्वकालमे भी पदार्थका सद्भाव हो जायगा। औरभी, धर्म होनेसे वह असत्त्व नहीं हो सकता। और सत्व और असत्व यदि वस्तुका स्वरूप होता तो सर्वदा एक वस्तुमे उक्तद्वयका (सत्वासत्वका) प्रसंग होता। परंतु यह अनुभवविरुद्ध है। कोईभी पुरुप सत् और असत् इन दोनोको एकत्र अनुभव नही करता। काल और देश--भेदसे ऐसा अनुभव होनेसेभी वस्तुद्वैरुप्य नही होता। देशान्तरमे और कालान्तरमे असत् होनेसे स्वदेशमे और स्वकालमे असत् होता है ऐसा नहीं। यह प्रत्यक्ष-विरुद्ध है। औरभी यदि सत्वासत्व वस्तुस्वरूप होगा तो सर्वदा सत्वासत्व प्रसंगके समान भग्न घटद्वाराभी मधुधारणादि प्रसंग होगा। अतएव एक धर्मीमे युगपद् सत्वासत्वादि विरुद्ध धर्मका समावेश संभव नहीं है। अतएव अखिल जडप्रपंचमे सत्वासत्व उभयरूप अनुमित नही हो सकता। अतएव जडप्रपंचका सत् या असत् या सदसद्रूपसे निर्धारण किया नहीं जा सकता। स्वरूपतः दुर्निरूपका कोईभीरूप वास्तव संभव नहीं है। ` सत्व या असत्व या सत्वासत्वरूपसे विचार-असहत्वही मिथ्यात्व है।

णत्व (मिथ्यात्व) ज्ञापित होता है । (४)

(ठ) व्यवहारकालीन सत्यत्वमिथ्यात्वविभागः—

उल्लिखित विचारद्वारा भ्रान्तिके समान व्यावहारिक प्रपचकाभी मिथ्यात्व प्रतिपादित हुआ है। मिथ्यात्व अविशेष होनेसेभी अवान्तर वैलक्षण्यवशात् अर्थक्रियासामर्थ्यविशेष उपपन्न होता है। मिथ्या भ्रान्तिदृश्यसे व्यावहारिक पदार्थका वैषम्य स्वीकृत होनेसे सत्यत्वापात होगा ऐसा कहना उचित नही है। परमतमे (सर्व-सत्यत्ववादीके मतमे) सर्व पदार्थोंका सत्व होनेसेभी जैसे सुखा-दिका अज्ञातसत्वराहित्य (घटपटादिके समान स्वकीय सुख

(४) (क) दुर्निरूपत्वात् परमार्थसत्यत्वप्रयोजक चित्स्वभावत्वविरहाच्च मायामयत्व ।

(विद्यार्थी=ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्यव्याख्या अमुद्रित)

(ख) तस्मात् विश्वस्य मिथ्यात्व अनात्मत्वादि हेतुभिः भेदसंधा-द्वदेव प्रसिध्यति ।

(विद्यासागरकृत न्यायचंद्रिका—अमुद्रित)

(a) The empirical inscrutableness of all natural things is a proof *a posteriori* of the ideality and merely phenomenal actuality of their empirical existence

(Schopenhauer's " The world as Will and Idea " Vol, II)

(b) If we are to speak of phenomenal truth it is essential to remember that what is phenomenally true is not really true, but really false.

(Mc. Taggart's "The Nature of Existence" Vol II)

दुःखादि पदार्थ अज्ञात अवस्थामे वर्तमान नही रहता) और अनन्य वेद्यत्व इत्यादि वैधर्म्य होता है तद्वत् मिथ्यात्व होनेसेभी अवान्तर भेद उपपन्न होता है। सर्वसत्यत्वमतमे जैसे स्वरूपविशेषके कारणही घटादिका चिरस्थायित्व और सुखदुःखादिका नियमपूर्वक आशुतर विनाशित्व होता है ऐसे मिथ्यात्ववादिके मतमेभी स्वरुप विशेषके कारणही किसीका चिरस्थायित्व और भ्रान्तिदृश्यका स्वप्रतिभासकालमेंही विद्यमानत्व होता है। मिथ्यात्व अविशेष होनेसेभी व्यावहारिकत्व और प्रातीतिकत्वरूपसे अवान्तर विशेष रहनेसे प्रपंचका सर्वसंमत सत्यमिथ्यात्व विभाग संभव होता है। प्रातिभासिक अपेक्षा व्यावहारिक पदार्थकी विलक्षण सत्ता गृहीत होनेसे उसको आपेक्षिक बोधसे सत्य कहा जाता है। प्रातिभासिक पदार्थका अस्तित्व रहनेसेही व्यहारकालमे भ्रमप्रमाविभागका उच्छेद नही होता।

(ड) मिथ्यात्व अवगत होनेका उपायः—

अनुमानद्वारा व्यावहारिक प्रपंचका मिथ्यात्व सिद्ध करना हो तो प्रकृत अनुमानके पहिले दृष्टान्तसिद्धिके लिये कहींपर (प्रातिभासिक शुक्तिरुप्यादिमे) मिथ्यात्व साधन करना होगा। सर्व दृश्यके मिथ्यात्व निश्चयके पहिलेहि प्रातिभासिक पदार्थका मिथ्यात्व निश्चित होनेसे तद्दृष्टान्तानुसारसे व्यावहारिक प्रपचका मिथ्यात्व अवगत होता है। यदि प्रातीतिक (मिथ्या) पदार्थका ज्ञान न होता तो व्यावहारिक (प्रसिद्ध सत्य) प्रपचका मिथ्यात्व बोधगम्य नही होता। (५)

(५) (क) स्वमादौ यद् यद् दृश्य तत्तत् मिथ्या इति व्याप्ति निश्चित्य विश्वगत दृश्यत्वेन व्याप्ति स्मरति यद्यत् दृश्य तत्तत् मिथ्येति तदैव मिथ्यात्वव्याप्य

(ढ) अद्वैतसिद्धिः—

इस प्रकारसे सद्वस्तु-अधिष्ठित द्वैतका मिथ्यात्व सिद्धिपूर्वक अद्वैतसिद्धि प्रदर्शित की। सिद्धांत निष्पन्न हुआ कि द्वैत अवास्तव ; अद्वैत वास्तव है; उभय अवास्तव (शून्यवाद) या उभयवास्तव (द्वैताद्वैतवाद) नहीं है। कल्पित (न्यूनसत्ताक) द्वैतसाधकका वास्तव अद्वैतत्व अविरूद्ध है।

(ण) पूर्वपक्षिसम्मत अद्वैत प्रतिपादनकीरीतिः—

पूर्वपक्षी-अद्वैतसिद्धि उद्देशसे जडप्रपंचका अनिर्वचनीयत्व (मिथ्यात्व) सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है। अद्वैत-सिद्धात निरूपण करनेके लिये ऐसा विचार प्रगट होना उचित है कि-

(१) ब्रह्मकी सत्ता और जगत्की सत्ता एकही है। जगत मिथ्या नहीं है।

(२) जो निर्गुण वही सगुण है। इस विषयमे निस्तरंग और सतरंग समुद्रका दृष्टांत है।

(३) अचिन्त्य शक्तियुक्त चेतन जगत्रूपसे परिणामप्राप्त होता है।

दृश्यत्वनद्विश्वमिति ज्ञान लिंगपरामर्शरूपमूत्पद्यते ततोविश्वं मिथ्येति ज्ञानमनुमितिरूपमुत्पद्यते।

(वेदान्तानुमिति अमुद्रित)

(ख) तुलाज्ञानकल्पिताभिन्नत्वे सति सत्वेन प्रतीत्यर्हं चिद्भिन्न मिथ्या दृश्यत्वात् जडत्वात् परिच्छिन्नत्वात् शुक्तिरूप्यवत्।

(वेदान्तार्थ निरूपण अमुद्रित)

(ग) मिथ्यात्वमपि मिथ्यैव दृश्यत्वाविशेषात्।

(वेदान्त सर्वस्वसमद अमुद्रित)

(त) पूर्वपक्ष खण्डन। जगत सत्य नही है :—

सिद्धान्ती-उक्तपक्ष विचारसह नहीं है यह क्रमशः कहा जाता है।

(१) स्वप्रकाश अद्वैतचैतन्यरूपत्वही ब्रह्मनिष्ठ सत्ता है। वही यदि जडरूप जगन्निष्ठ सत्व हो तो शुक्तिमे आरोपित रजतस्थलमे रजतत्वकी विरोधिनी शुक्तिकी सत्तासे जैसे रजतका मिथ्यात्व उपपन्न होता है ऐसेही जडविरोधी स्वप्रकाश सत्तामे जगन्निष्ठ स्वरुपतः मिथ्यात्व उपपन्न होगा। तात्पर्य यह है कि वस्तुगत्या स्वप्रकाश अद्वितीय अबाध्यत्व-उपलक्षित (अबाध्यत्व रूप धर्म जिसमे प्रविष्ट नही ऐसा) जो शुद्ध चिद्रूप है वही शुद्ध चिद्रूपही सद्रूप ब्रह्मनिष्ठ धर्मरूपसे कल्पित होकर सत्वरूपसे कथित होता है अर्थात् ब्रह्मकी सत्ता इसप्रकारसे अभिहित होती है। वह चिद्रूपही यदि जगत्का सत्त्व हो तो वह चिद्रूप, जडसे अत्यन्त भिन्न होनेसे उसमे जडधर्मता हो नही सकेगी क्योंकि अत्यन्त भिन्न पदार्थका धर्मधर्मिभाव होता नही है। अतएव जडसे अत्यन्त भिन्न होनेके कारण, जडत्व-विरोधी होनेसेभी वह सत्त्व, (कल्पित भेदमूलक ब्रह्मनिष्ठसत्त्व) जडके साथ कल्पित तादात्म्यसे जडका धर्म होता है ऐसा स्वीकार करना होगा, जैसे शुक्तिके कल्पित तादात्म्ययुक्त रजतमे शुक्ति-निष्ठ धर्मकी प्रतीति होती है। सुतराम् यहां प्रतिपन्न हुआकि ब्रह्मसे अत्यन्त अभिन्न होनेसेभी वह स्वरूप (सत्त्वस्वरूप) जैसा कल्पित ब्रह्मभेदसे ब्रह्मका धर्म होता है ऐसा जडसे अत्यन्त भिन्न होनेसेभी वह स्वरूप जडके साथ कल्पित तादात्म्य प्राप्त होनेसे जडका धर्म होता है। तात्पर्थ यह है कि धर्मधर्मिभाव अत्यन्त भेदस्थलमे या अत्यन्त अभेदस्थलमे नही होता किन्तु धर्मधर्मि

भावमें भेदाभेद उभय आवश्यक होते हैं। ब्रह्ममें सत्त्वका अत्यन्त अभेद होनेसे उसमें कल्पित भेदमूलक धर्मधर्मिभाव होता है। उक्त चिद्रूपरूप सत्त्व जडसे अत्यन्त भिन्न होनेसेभी कल्पित तादात्म्यसे जडधर्म होता है। अर्थात् ब्रह्ममें अत्यन्ताभेद रहते हुएभी कल्पित भेदमें ब्रह्मकाधर्म सत्त्व होता है। और जड प्रपंचसे अत्यन्त भिन्न होनेसेभी कल्पित जडतादात्म्यसे (जडाभेदसे) उक्त सत्त्व जडका धर्म होता है; उक्त सत्त्व किसिकाभी (जडका या ब्रह्मका) वास्तविक धर्म नहीं है। परंतु जो पदार्थ ब्रह्ममें आरोपित होगा उसमेंही ब्रह्मका धर्मरूप जो उक्त चिद्रूपरूपसत्त्व उसके संसर्गका आरोप होगा, जैसे शुक्तिमें आरोपित जो रजत उसमें शुक्तिनिष्ठ सत्त्व और इदंतारूप धर्मका आरोप होता है। फलतः रजतत्वविरोधी जो शुक्तिगत सत्त्वादि धर्म उस धर्मादिका संसर्ग-आरोपके अन्यथा अनुपपत्तिसे जैसे शुक्तिमें रजत आरोपित यह सिद्ध होता है ऐसे जड पदार्थमें जडत्वविरोधी ब्रह्मसत्ताके आरोपकी अन्यथा उपपत्ति न होनेसे जडपदार्थ ब्रह्ममें आरोपित है यह सिद्ध होता है। अतएव जगन्निष्ठ मिथ्यात्वही प्रतिपन्न होता है। तात्पर्य यह है कि कोईभी पदार्थकी सत्ता स्वीकार करनेके लिये वह पदार्थ ब्रह्ममें आरोपित है ऐसा मानना होगा। सत्ता ब्रह्मधर्म-स्वरूप होनेसे, उक्त पदार्थका ब्रह्ममें आरोप होनेसेहि ब्रह्मनिष्ठ सत्तासे वह पदार्थ सत्तावान होगा। अतएव सत्ताप्रतीति-अनुसारसे सर्व पदार्थ ब्रह्ममें आरोपित यह अवगत होता है। अतएव सर्व पदार्थका मिथ्यात्व सिद्ध होता है। अतएव जड और चेतनकी सत्ता एक होनेसेभी जगत् सत्य नहीं

किन्तु मिथ्या है।

(थ) जो निर्गुण वही सगुण इस मतकी असमीचीनता प्रदर्शनः—

(२) एकही निरंशका कर्तृत्व और कर्मत्व, गुणत्व और प्रधानत्व, सिद्धत्व और साध्यत्व, सापेक्षत्व और निरपेक्षत्व, विषमत्व और समत्व-इन सब द्वन्दरूपसे अवस्थान युक्तियुक्त नहीं है। समुद्रका दृष्टांत संगत नहीं है। समुद्र सावयव पदार्थ है। ब्रह्म निरवयव है। ब्रह्ममें एकत्व अनेकत्व अंशांशिभाव प्रभृति समस्तही अनुपपन्न है। अतएव जो निर्गुण वही सगुण यह वचन विचारसह नहीं है। एकका उभयात्मकत्व विरुद्ध है।

पूर्वपक्ष-एकही वस्तु अनेकाकार होती है। उस आकारमें कोईआकार अनुवृत्तिबुद्धिग्राह्य, कोई आकार व्यावृत्ति-बुद्धिग्राह्य है। उस स्थलमें जो अनुवृत्तिबुद्धिग्राह्य वही अनुवृत्त होनेसे सामान्य रूपसे कथित होता है और जो व्यावृत्तिबुद्धिग्राह्य है वह व्यावृत्त होनेसे विशेषरूपसे कथित होता है। अतएव वस्तुका द्वयात्मकत्व हो सकेगा।

सिद्धांत—इसस्थलमें प्रश्न है कि, क्या, जो सामान्य वही विशेष है, अथवा सामान्य अन्य है और विशेष अन्य है। प्रथम पक्षमें सामान्य और विशेषका परस्पर स्वभावत्व होनेसे सांकर्य होगा। अतएव यह सामान्य यह विशेष, ऐसे विभाग-अभावके कारण परमार्थतः एकही वस्तुका द्वैरूप्य उपपन्न नहीं होगा। द्वितीयपक्ष स्वीकार करनेसे नानात्व होनेका कारण वस्तुद्वय होगा, एक वस्तुका द्वैरूप्य नहीं होगा। किंवा एक वस्तुसे सामान्य

विशेषका अभेद अंगीक्रियमाण होनेसे उनके परस्परस्वभावका विवेक सिद्ध नहीं होगा क्योंकि एकसे अभेद होनेसे उस उभयकाभी एकवस्तु-स्वभावके समान अभेद प्रसंग होगा। यदि सामान्य और विशेषकी परस्पर स्वभावभिन्नता अंगीकृत हो, तो उनकी अभेदयुक्त एकवस्तु सिद्ध नहीं होगी। उस उभयके साथ अभिन्न होनेसे उस एकत्वरूपसे अभिमत पदार्थकाभी सामान्य-विशेषस्वरूपके समान द्वित्व प्रसंग होगा। अतएव एक, उभयात्मक यह परस्पर व्याहत है। एकरूपत्व होनेसे धर्मभेद सिद्ध नहीं होगा। वस्तुका एकत्व स्वीकृत होनेसे अकल्पित धर्मभेद सिद्ध नहीं होगा क्योंकि एकवस्तुका भेद विरूद्ध है। अकल्पितभेद अर्थसे नानात्व ज्ञापित होता है। जो नाना है वह कैसे एक होगा? विधि और प्रतिषेध एकत्र अयुक्त होनेसे एक और नानात्व परस्पर विरूद्ध है। एकत्व और अनेकत्वका परस्पर परिहारास्थितिलक्षण विरोध होनेसे एकका बहुआकार संभव नहीं है। अतएव एकका धर्मभेद कल्पित होगा। सुतरां, जिस हेतुसे कल्पित अनेकता संभव है उसी हेतुसे एकका वास्तव द्वैरूप्य संभव नहीं है। औरभी 'धर्मधर्मिभाव सत्य है' ऐसे मतानुसारियोंके अत्यन्त भिन्न पदार्थद्वयका गवाश्वादिके समान धर्मधर्मिभाव अनुपपन्न होनेसे उन उभयके अभेदको वास्तव कहना होगा और इस हेतुसे एककी अनुवृत्तिसे अपरकी व्यावृत्ति दुर्घट होगी।

पूर्वपक्ष—चिद्लक्षण आत्मा द्रव्यरूपसे सर्वावस्थासे अभिन्न होनेसे अनुगमात्मक है, पर्यायरूपसे प्रतिअवस्थासे भिन्न होनेसे व्यावृत्तात्मक है।

सिद्धान्त–अब प्रश्न है कि चैतन्यात्मक द्रव्य तद्पर्यायके साथ कदाचित् अविकृत होकर संबंध-प्राप्त होता है अथवा पूर्वरूप त्यागपूर्वक संबंध-प्राप्त होता है ? । यदि अनन्तरपक्ष स्वीकृत हो तो अवस्थावान् पदार्थकाही अभाव होगा और नित्यत्व-हानि-प्रसंग होगा । यदि प्रथम पक्ष स्वीकृत हो तो पूर्वोत्तर अवस्थाका विशेष (अन्यथात्व) नही होगा । अविकृत नित्य पदार्थकी क्रमिक या युगपत् अर्थक्रिया नहीं हो सकती । जो पूर्वोत्तर अवस्थामे विशेषता प्राप्त नहीं होता वह परिणामी नहीं होता । यदि द्रव्य और पर्यायका अभेद अंगीकृत हो तो सर्वथाहि अभेद होगा तद्विपरीत भेद नही होगा । एकका एकदा परस्पर विरूद्ध विधि प्रतिषेध युक्तियुक्त नहीं है अन्यथा एकत्व हानि होगी । विरूद्ध धर्म-युक्तकाभी यदि एकत्व हो तो भेदव्यवहारका उच्छेद होगा। एक और अनेक ये परस्पर परिहारस्थित लक्षण है । एकका स्वभावद्वय युक्त नहीं है । ऐसा होनेसे एकत्व हानि प्रसंग होगा। अतएव प्रतिपन्न हुआ कि एक आत्मामे व्यावृत्ति और अनुगम संभव नही है । नित्य अथच अवस्थावान् ऐसा नही हो सकता । अवस्था अवस्थावानसे अनन्य होनेसे अवस्थाके समान अवस्थावानकेभी उत्पत्ति विनाश होंगे अथवा अवस्थावानके समान अवस्थाकाभी नित्यत्व होगा ; किंवा उपकारके अभावके कारण अवस्थासमूह तत्संबंधीय है ऐसा सिद्ध नहीं होगा । अवस्था होनेसे नित्य एक चेतन स्वीकार नहीं कर सकते । (६)

---

(६) इसी हेतुसे बौद्धलोक, जैन और मीमांसकोंके (जैमिनीके) समान अनुगत-व्यावृत्तात्मक आत्मा किंवा न्यायवैशेषिकप्रभाकरके समान

(३) अब शक्तियुक्त चेतन जगत्‌रूपसे परिणत होता है इसपक्षकी परीक्षा की जाती है । प्रथमतः परिणाम-विषयमें कहते हैं ।

(द) ब्रह्मपरिणाम खण्डनः—

सचित्स्वरूप निरवयव है, उसका संपूर्ण या एकदेशस्थ परिणाम अनुपपन्न है । अंशतः परिणाम संभव नहीं है क्योंकि वह निरवयव है । उपचय अपचय सावयवव्याप्त होता है । अवयवका अन्यथा विन्यासविना परिणाम दृष्ट नहीं हैं । सावयव वस्तुही परिणाम प्राप्त होती है, सावयवत्व निरवयवत्व परस्पर विरुद्ध है । एकही वस्तु एकसमयमें सावयव और निरवयव होगी यह संभव नहीं है । जो निरवयव वह कारणरूपसे तथा कार्यरूपसे रहेगा ऐसा हो नहीं सकता । एक निरवयवका द्विधासत्त्व हो नहीं सकता । जो द्विधाभूत है वह सावयव होगा । अतएव चेतनका अंशतः परिणाम हो नहीं सकता । उसका संपूर्ण परिणामभी संभव नहीं है । ऐसा होनेसे जगद्व्यतिरेकसे चेतनका असत्व होता है, क्योंकि पूर्वरूपके संपूर्ण त्याग-पूर्वक रूपान्तरकी उत्पत्ति होनेसे इस उत्पन्न पदार्थका प्राक्तनरूपत्व रह नहीं सकता । अथच जगतके प्रकाशरूपसे चेतनतत्त्व प्रतिभात होता है । सर्वावधि साक्षिरूप होनेसे चेतन निर्विकार (परिणामरहित) है । परिणाम नियमपूर्वक परिणामीके आश्रित होता है । अविकारि

अनुगत आत्मारूप द्रव्य नहीं मानते । अद्वैतवेदान्तिलोक अनुभवके अन्यथा अनुपपत्तिसे साक्षी स्वीकार करके उसमें परिणाम न मानकर परिणाम और तदाश्रयका अनिर्वचनीयत्व अंगीकार करते है ।

चैतन्य परिणामिरूपसे विकारका आश्रय हो नहीं सकता। चेत.
नके कार्याकारसे परिणाम अथच अपरिणत स्वप्रकाश साक्षिरूपसे अवस्थान, ये उभय परस्पर विरुद्ध है। एक समयमे एक वस्तुका परिणाम अथच अपरिणाम ऐसा नही हो सकता। स्वरुपसे अप्रच्युत-स्वभावका सर्व प्रकार तद्विपरीत कार्याकार परिणाम संभव नही है। निरंश कारणकी अनेकरूपता विरुद्ध है।

नित्यस्वरुप चेतनका परिणाम हो नही सकता। अंशतः या संपूर्ण परिणामप्राप्त पदार्थ अनित्य होगा। भागशः परिणाम होनेसे सावयव होनेके कारण कार्य होगा। अतएव अनित्य होगा। संपूर्ण परिणाम होनेसे सर्वात्मरूपसे प्राक्तनरूपका त्याग होनेके कारण, साक्षात् अनित्यत्व होगा। अतएव चेतनस्वरूप जगत्रूपसे परिणाम प्राप्त नही है।

यदि कार्य चित्परिणाम होता तो उसकी चिद्रूपता होती। चैतन्य-परिणामका जडत्व उपपन्न नहीं है। जडपदार्थ चेतनाभिन्न या चेतनका धर्म नही। प्रकाशस्वभावका प्रकाश्यधर्म स्वाभाविक नहीं है। दृश्य द्रष्टृस्वरूपका स्वरूपभूत नहीं है। अथच, परिणाम परिणामिका स्वरूपभूत होता है। अतएव चेतन परिणामी नही है।

एकमात्र चेतनकाही अवस्थाभेदसे कारणत्व और कार्यत्व अंगीकृत हो नही सकता, क्योंकि चेतन अविकारि है। विकारका अर्थ परिणाम या परिस्पन्द या परस्पर संबंधकृत अतिशयतायोग है। अमूर्त निरवयव सन्मात्रस्वरूपका सर्व प्रकार विकार अनुपपन्न है। यादृशस्वरूप कारणावस्थामे रहता है तादृश-

स्वरूपही यदि कार्यावस्थामे रहेगा तो कार्य और कारणावस्थाको विशेषता न होगी। विशेषता स्वीकार करनेमे उस आगन्तुक विशेषरूपसे उस चेतनका परिणामित्व मात्र होगा। अतएव विकार-अभावरूप अविकारित्व अव्याहत नही रहेगा। कार्यसमूह परिवर्तित हो अथच उपादान-कारण निर्विकार रहे ऐसा हो नही सकता। कार्यगत परिवर्तनके साथ उपादान कारणकाभी परिवर्तन होगा; क्योंकि कार्य और उपादान कारणका तादात्म्य होता है, कार्य उसका स्वरूपभूत होता है। चेतनरूप कारणका निर्विकारत्व अव्याहत होनेके लिये यदि उक्त तादात्म्यको मिथ्या माना जावे तो जडरूप अन्यथाभाव मिथ्या होगा। एककाही, परिणामविना, अन्यथाभाव होनेसे वह अन्यथाभाव मिथ्या है। (७)

(घ) शक्तियुक्तता निर्वचनार्ह नहीं हैः—

अब शक्तियुक्तता संबंधमे विचार किया जाता है। यह जो चैतनका शक्ति-वैशिष्ट्य है, वह, क्या, समवायद्वारा होता है?

---

(7) (a) If it is said that generation is only the manifestation of a substratum which does not change, the contradictions are not diminished, but increased, since this theory expresses only the more clearly the idea of the one unchanging substratum as having concentrated in it all multiplicity and all contradiction, as the source from which the plurality and the opposed qualities of the outward manifestation shall be evolved.

(Herbart)

अथवा संयोगद्वारा किंवा तादात्म्यद्वारा अथवा मायिक है ? समवायद्वारा हो नही सकता, क्योंकि शक्तिको चेतनसे सर्वथा भिन्न माना नहीं जाता। समवायस्थलमे संबंधिद्वय सर्वथा भिन्न होता है और वह समवायभी संबंधिसे अत्यन्त भिन्न होता है। चेतनकेसाथ शक्तिका संयोग संबंधभी हो नही सकता। सांशद्वयकाहि संयोग होता है, निरंशद्वयका किंवा एक सांश और अपर निरंश इन दोनोंका संयोग नही होता। औरभी, संयोग समवायाधीन होता है। समावायका खण्डन आगे करेंगे। तृतीय पक्षमे विचार्य है कि वह तादात्म्य क्या भेदसहिष्णु है अथवा अभेदरूप है ? समवाय निरासद्वारा आद्यकल्प निरसन होता है। भेदाभेद उभयरूपता पहिले खण्डित हुई है, औरभी करेंगे। द्वितीय कल्पमे चेतनातिरिक्त शक्ति सिद्ध नही होगी। चतुर्थपक्ष सिद्धांति-सम्मत पक्षमे अंतर्भाव होगा।

(b) In its proper sense, causality is not a category which is applicable to the relation of the infinite to the finite; and if we attempt so to apply it, what it expresses is not the reality of the finite, but either the limitation or the non-reality of the infinite.

Causality is a category only of the finite. The relation of cause and effect is one which implies the succession or (though not with strict accuracy) the co-existence of its members. In the latter case it presupposes the existence of things external to, and affecting and being affected by each other.

(न) अचिंत्य शब्दका अर्थविचारः—

अचिंत्य शब्दसे साधारणतः सत्यरूपसे नित्य ऐसा अर्थ गृहीत होता है परंतु यह संगत नहीं है। ऐसा होनेसे उक्त शब्द-प्रयोग व्यर्थ होता। चिंताकी अगम्य ऐसा अर्थ होनेसे, उस शक्तिका अस्तित्व या नास्तित्व विषयमें कुछ नहीं कह सकते। जो कदाचित्‌भी कोई आकारमें बुद्धिमें आरोहित नहीं है उसका प्रतिपादन नहीं कर सकते। अचिंत्य पदार्थ रहनेसे हम उसे नहीं जान सकते और हम जहांतक जान सकते हैं वहांतक उसका अस्तित्व नहीं रह सकता। और यदि अचिंत्य अर्थ सत् या असत् या सदसद्रूपसे अनिर्वचनीय हो तो वह मिथ्या होगा। उस मिथ्या पदार्थका संबंधमूलक चेतनका सगुणभावभी मिथ्या होगा। ऐसे मिथ्या पदार्थको चेतनके शक्ति रूपसे अभिहित नहीं कर सकते। तोभी, शक्तिसंबंधसे विचार करते हैं।

In the former, it is a relation in which the first member is conceived of as passing into the second, the cause, or the sum of conditions which constitute it, loses its existence in the effect or in the sum of the new conditions to which it has given rise The cause, in other words, is only cause in and through the consummated result which we call effect, and the very reality or realisation of the former implies, in a sense, its own extinction In the impact of two balls the motion of the first becomes the cause of the motion of the second only

(प) शक्ति खण्डनः—

(१) चेतनके समसत्ताक कोईभी पदार्थ नही है, अतएव कोई दार्थ निच्छक्ति नही हैः—

शक्ति, शक्तिमानके समसत्ताक होती है। प्रकृतस्थलमे चेतनके समसत्ताक कोई पदार्थ नही है। चेतनकी सत्ता और ज्ञेय (जड) पदार्थकी सत्ता सम नही है। चेतन स्वप्रकाश होनेसे किसिकेभी अधीन नही है, अर्थात् अपरके सत्तासे सत्तावान नही है, किंवा अपरके भानसे भासित नही है अथवा अपरके आश्रित नही है। किंतु जडपदार्थ तद्विपरीत है। अतएव जड, चेतनके समसत्ताक नही है। चेतन, अवस्थाका प्रकाशक, स्वरूपतः अवस्थारहित निर्विकार है; जडपदार्थ, अवस्थाभेदसे विकारग्रस्त है। अतएव ज्ञान और ज्ञेय समसत्ताक नही है। जडको चेतनके समसत्ताक कहनेके लिये यह प्रदर्शन करना होगा कि, उसकी सत्ता चेतन-सत्तासे भिन्न अथच तत्सदृश है, अथवा वह चेतन-सत्तारूप किंवा उसके अंतर्गत है। परंतु ये सब पक्षही असंगत है। अतएव जड, चेतनके समसत्ताक नही है। चेतनसे जडकी सत्ता अभिन्न

when it has ceased to exist in the former; the force which has existed as heat becomes the cause of motion only when it has exhausted itself of its existence in the one form and become converted into the other. But, oviously, in neither of these senses can we embrace the relation of the infinite and the finite under the form of causality. The infinite cannot be conceived of as external to, and acting on, the finite, as one finite body is out-

नहीं है। अथच चेतनके साथ जडका तादात्म्य होनेसे उसको चेत नसे भिन्नरूपसेभी निर्देश नही कर सकते। अवशेष मानना होगा कि, सापेक्ष जडपदार्थ स्वत सिद्ध चेतनसत्तासे सत्तावान, उस प्रकाशसे प्रकाशित अथच न्यून सत्तावान है। न्यूनसत्ताक होनेसे वह चेतनरूप अधिष्ठानका स्वरूपभूत नही होगा। अध्यस्त पदार्थके अपेक्षा अधिष्ठान विषमसत्ताक होता है। अतएव (समसत्ताक) न होनेसे कोईभी पदार्थ चेतनके शक्तिरूप नही है।

---

side of, and acts on, another, in such a relation it would cease to be infinite Nor, again, can you speak of the infinite as a cause which, in producing the finite, passes wholly into it and becomes lost in it, for, in that case, the existence of the finite would be conditioned by the non-existence or extinction of the infinite

(Caird's "Spinoza")

(c) So far as a thing is timeless it cannot change, for with change time comes necessarily But how can a thing which does not change produce an effect in time ? That the effect was produced in time implies that it had a beginning, And if the effect begins, while no beginning can be assigned to the cause, we are left to choose between two alternatives Either there is something in the effect—namely, the quality of coming about as a change—which is altogether uncaused Or the timeless reality is only a partial cause, and is determined to act by something which is not timeless In

(२) स्वप्रकाश चेतन निर्धर्मक है:—

यदि स्वप्रकाश ज्ञान-स्वरूप सधर्मक हो तो उसका धर्म जड (अस्वप्रकाश) या अजड (स्वप्रकाश) होगा। विचार करनेसे ये दोनो पक्षभी असंगत प्रतिपन्न होते है। स्वप्रकाशके अंतर्गत यदि जड रहे तो उसको स्वप्रकाश नही कहा जायगा। जो स्वप्रकाश वह अन्यके अधीन नही है। जो जड है वह अन्यके अधीन है, स्वतःसिद्ध नही। जिसका प्रकाश अपरके अधीन है उसको जड कहते है। जो अन्यके अधीन है, कैसे वह स्वतः सिद्धके अंतर्भूत होकर उसका धर्म होगा? जड कभीभी सर्वावधि साक्षिभूत विकाररहित स्वप्रकाशका धर्म नही हो सकता। जो जड वह चेतनके विषयरूपसे प्रतिभात है। विषय कभीभी विषयीका स्वरूपभूत हो नही सकता अन्यथा उसका विषयत्वही लुप्त होगा। अतएव सिद्ध हुआ कि जड स्वप्रकाश-ज्ञानका धर्म नही है। स्वप्रकाशज्ञानस्वरूपका धर्म स्वप्रकाशरूपभी नही है। जो स्वप्रकाश है वह निरपेक्ष है। यदि वह सापेक्ष हो तो उसके स्वप्रकाशत्वका लोप होगा। अथच जो धर्म वह सापेक्ष होता है। धर्मधर्मी परस्पर सापेक्ष होते है। दो स्वप्रकाशोंका परस्पर सापेक्षभाव नही हो सकता। सापेक्षताविना धर्मधार्मिभावभी नही होगा। अतएव जो स्वप्रकाश है वह स्वरूपतः धर्मी या धर्म नहीं हैं, वह निर्धर्मक है। यदि सच्चित्स्वरूप निर्धर्मक न होता

---

either case, the timeless reality fails to explain the succession in time.

(Mc. Taggart's 'Hegelian Dialectic')

तो नित्य न होता। धर्मधर्मीका तादात्म्य होनेसे धर्मके उत्पत्ति और नाशसे धर्मीके उत्पत्तिनाशरूप विकार होंगेहि। यदि सच्चित्स्वरूप सधर्मक होता तो निरूपणार्ह धर्मका संबंधव्यानभी होता, अथच धर्मसंबंध उपपन्न नही है। अतएव वह निर्धर्मक है (८)। निर्धर्मक अर्थसे वास्तव धर्मका निषेध ज्ञापित होता, आरोपित धर्मका निषेध नही है। व्यावहारिक धर्म रहते हुएभी अपने समसत्ताक धर्मका विरह होनेसे निर्धर्मकत्व उपपन्न होता है। अतएव चेतनके समसत्ताक कुछ न रहनेसे, अथच शक्तिमानकी स्वरूपभूत शक्ति उसकी समसत्ताक होती है ऐसा नियम होनेसे चेतनके शक्तिरूपसे कुछ निर्वचनीय नही है।

(३) गुण और गुणी, कार्य और उपादानकारण सर्वथा भिन्न नही हैः—

अब धर्मधर्मिभाव (गुणगुणिभाव) और कार्यकारण विचारद्वारा उक्त सिद्धात प्रतिष्ठित करते है। सर्वथा भिन्न ऐसे दो पदार्थका गुणगुणिभाव कार्यकारणभाव नही होता। द्रव्यके साथ एकता-

---

(८) भिन्नत्वे अभिन्नत्वे सम्बन्धत्वे असम्बन्धत्वे चातिप्रसङ्गानवस्थाभ्यां धर्मधर्मिभावानुपपत्तेः।...नच धर्माभावस्य धर्मभावाभावाभ्यां व्याघातेन दुस्तर्कतापत्तिरिति वाच्य। धर्माभावस्य स्वरूपतयैव सत्त्वांगीकारेण व्याघाताभावात्। अभेदेऽपि भेदकल्पनया धर्मधर्मिभावव्यवहारस्य त्वयापीष्टत्वात्।

(अद्वैतसिद्धि)

प्राप्त होकरही गुणकी प्रतीति होनेसे गुणगुणीकी सर्वथा पृथकत्व प्रतीतिसिद्ध नही है।

पूर्वपक्षी—(नैयायिक-वैशेपिक-प्रभाकर) गुणगुणी सर्वथा भिन्न होनेसेभी समवाय संबंधद्वारा उनकी अपृथकसिद्धि होती है। समवाय उस संबंधिद्वयसे पृथक पदार्थ है।

सिद्धान्ती—संबंधीयोंके पृथकत्व सिद्ध होनेके पश्चात् उनका संबंध प्रतीत होनेसे समवायकी कल्पना कर सकतेथे। परंतु गुणगुणिस्थलमे पृथक प्रतीतिका अभाव होनेसे, समवाय कल्पना व्यर्थ है। समवाय संबंध संबंधिसे स्वयं भिन्न है, अतएव वह संबंधियोंकी अभेदबुद्धि आधान करनेमे सक्षम नही है। यदि विशेपण, विशेप्यसे एकान्त भिन्न होता तो विशेप्यमे स्वानुरूपा सदाबुद्धि कैसी जन्मायगी ?

औरभी, मृद्घट, शुक्लपट, ऐसा सामानाधिकरण्य प्रत्यय होता है। ऐसा प्रत्यय गुणगुणी कार्यकारण का भेदबाधक है।

पूर्वपक्ष—शुक्लपट इत्यादि स्थलमे सामानाधिकरण्य प्रतीति भ्रमरूप है।

सिद्धांत—ऐसा कहना उचित नही है। रूपादि गुणके साधक रूपसे अभिमत जो शुक्लपट इत्यादि प्रत्यक्ष है वह गुणी-तादात्म्य (अभेद) रूपसे गुणादि-विषयक होता है। इस प्रत्यक्षको यदि भ्रमरूप मानोगे तो गुणकीभी सिद्धि न होगी, क्योंकि गुणमात्र-गोचर प्रत्यक्ष नही होता किंतु धर्मीके साथ गुणका प्रत्यक्ष होता है। अतएव प्रत्यक्षद्वारा गुणिभेद कैसे सिद्ध होगा ? उक्त

रूप मानोगे तो इस प्रत्यक्षद्वारा गुणीके अभिन्नरूपसे (भिन्न रूपसे नही) गुणकी सिद्धि होगा। अतएव तादृश उपजीव्य प्रत्यक्षका विरोध होनेसे कोईभी प्रमाणद्वारा भेदकी सिद्धि नही होगी। भेदव्यापक जो पृथक ज्ञप्ति और पृथक स्थिति उसका अभाव गुणगुण्यादिमे और कार्यकारणादमे होनेसे उसका व्याप्य जो भेद वहभी दुर्लभ होगा। अतएव गु" गुण्यादिका समवाय नहीं मानना। उल्लिखित विचारद्वारा सि हुआकि उपादान कारणस कार्य तथा गुणाम गुण सर्वथा भि नहीं है।

(४) कार्यकारण, गुणगुणी, सर्वथा अभिन्न नही हैं

यदि अत्यत अभेद होगा तो घट घ्र प्रतीति जमे नह होती ऐमे उक्त प्रतीतिभी (मृद्घटप्रतीतिभी) नही होती। जे जिससे अव्यतिरिक्त है वह उसका कारण या कार्य नहा होत क्योंकि कार्य और कारणका भिन्न लक्षण होता है। उपादान पूर्वसिद्ध होता हैं और उपादेय असिद्ध होता है। एकत्र युगपत सिद्धत्वासिद्धत्व विरुद्ध ह। अतिशयता न रहनेमे कार्य कारणभाव नही हो सकता, अन्यथा यह कार्य और यह कारण ऐसी असकीर्ण व्यवस्था केसे होगी? कार्यकारणका सर्वथा अभेद होनेस आपनही अपना कारण होगा। कार्यकारणका ऐक्य हो तो उत्पत्तिके पूर्व कारण रहनेसे, तदभिन्न कार्यकी भी सत्ता आवश्यक होनेमे, सदाही कार्य उत्पन्न होगा। कारणके समान कायका सत्त्व होनेसे कारकव्यापार निरर्थक होग। अतएव सिद्ध हुआ कि कार्य कारणा भिन्न नहीं ह। अभेद होनेमे रूपान्तर नही हागा 'रुपान्तरत्व यावत '

और रूपान्तर होनेसे अमेद नही होगा ' अभेदव्याघातः '। धर्म-धर्मिभावभी अत्यन्त अभेदस्थलमे नही होता। अभेद, संबंधरूप नही है।

(५) कार्यकारणका भेदाभेदवाद खण्डन— समान-सत्ताक भेद और अभेद युगपत् एकत्र असंभव है। घटादि यदि मृदादि-अभिन्न हो, तो मृत्तिकासे घटकी उत्पत्ति नही होगी।

पूर्वपक्षी— भेदभी है अतएव उससे उत्पत्ति होगी।

सिद्धान्ती—जायमान पदार्थ मृत्तिकासे भिन्न होनेसे उत्पत्तिके पहिले नही है ऐसा कहना होगा।और घटादि जायमानही है, क्योंकि उत्पत्तिके पहिले घटशब्द और घटबुद्धि नही होती। जो पहिले असत् वह सत्से भिन्न होगा अतएव उसमे सत्का अभेद नही होगा। इस प्रकार मृत्तिका उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है ऐसी प्रतीति घटोत्पत्तिकालमे मृत्तिकामे न होनेसे, उत्पत्ति-विनाशवान घटादिकी मृदभिन्नता नही होती। अतएव जो उत्पन्न-विनष्ट होता है वह उसके उपादानसे अत्यन्त भिन्नही होता है। अतएव भिन्नाभिन्नपक्ष समीचीन नही है।

अब घटपदका अर्थ प्रदर्शन पूर्वक पुन भेदाभेदपक्ष विशेषरूपसे खण्डित करते है। जो पृथुबुध्न (गोलाकार) उदराकार विशिष्ट वस्तु वह घट शब्दका अर्थ है. केवल मृत्तिका घटशब्दका अर्थ नही है। केवल मृत्तिकामे घटबुद्धि नही होती किंवा घट शब्द प्रयुक्त नही होता। यदि घट मृत्तिकासे अभिन्न होगा, तो उत्पत्तिके पहिले भी मृत्तिका जैसे अनुभव की विषय होती है ऐसा कम्बुग्रीवाकार घट अनुभूत होना चाहिये; मृत्तिका जैसे अपनेमे

कारण नहीं है वैसे घटमेंमी कारण नहीं होती।

पूर्वपक्षी— भेद रहनेसे घटकी पूर्वानुपलब्धि होती है तथा मृत्तिका घटकी कारण है इस प्रकार व्यवस्था होती है।

सिद्धान्ती– इसस्थलमें प्रष्टव्य है, उस भेदके रहनेमें क्या होना है? जैसा घटस्थितिकालमें, भेद, अभेद-सत्ता-विरोधि नहीं है वैसा घटोत्पत्तिके पहिले भी, भेद, प्रतियोगिसत्ताका (अभेदकी सत्ताका) विरोधी नहीं होगा। अतएव भेद माननेसेभी उक्त दोष होगा अर्थात् घटोत्पत्तिके पहिले घटबुद्धि और कार्यकारणभाव अनुपपत्तिरूप दोष होगा। भेद, विद्यमान जो प्रतियोगी (अभेद), उसके अनुपलंभमें प्रयोजक नहीं होता (अर्थात् भेद रहनेसे अभेद प्रतीत नहीं होगा ऐसा कह नहीं जा सकता) अथवा घटके कार्यत्वमेंभी (घट कार्य होनेके लिये भी) भेद प्रयोजक नहीं है। ऐसा होनेसे (प्रयोजक होनेसे) घटस्थितिकालमेंभी भेद रहनेसे अभेदानुपलब्धि प्रसङ्ग होगा और घटकी पुनरुत्पत्ति प्रसङ्ग होगा। तात्पर्य यह है कि, भेदही अभेदकी अनुपलब्धि और घटके कार्यत्वमें प्रयोजक है और वह (भेद) स्थितिकालमें (घटोत्पत्तिके अनन्तर) है परंतु स्थितिकालमें घट और मृत्तिकाके अभेदकी अनुपलब्धि नहीं है तथा घटकी कार्यतामी स्थितिकालमें (कार्यके अनन्तरक्षणमें) नहीं है। अतएव भेद, अभेदके अनुपलब्धिमें और घटके कार्यतामें प्रयोजक नहीं होगा। स्पष्टीकरण—मृत्तिकागत रूपादि मृत्तिकाके और मृत्तिकानिष्ठ कार्यताके प्रयोजक नहीं है। इसका हेतु क्या है? मृत्तिकामें जो मृत्तिकाका अभेद उसके अविरुद्ध वहरूपादि (मृत्तिकागतरूपादि) होते हैं, यही वह हेतु है। इस प्रकार

मृद्घट-भेदभी मृद्गत अभेदके अविरुद्ध होनेसे उससे (उक्तभेदकृत) घटके अनुपलंभादि सिद्ध नहीं होंगे क्योंकि घटस्थितिदशामे भेद रहनेसेभी घट-अनुपलंभादिका अभाव होता है अर्थात् यदि भेद घटके अनुपमलंभ और उत्पत्यादिमे प्रयोजक हो तो घटोत्पत्तिके अनन्तरभी घट अनुपलव्ध होगा और घटोत्पत्ति अनन्तर भी उस घटकी उत्पत्ति होती। परंतु यह दृष्ट नही है। अतएव भेद उक्तद्वयका प्रयोजक नही है।

पूर्वपक्षी—पहिले घट सत् नही है। अतएव अनुपलंभ और कार्य-कारण-भाव उपपन्न होगा। अर्थात् घटोत्पत्तिके पहिले उसका अभेद रहते हुएभी, घटका असत्व होनेसे उसका अनुपलंभ होता है।

सिद्धान्ती—ऐसा कहना उचित नहीं है। घटाभिन्न मृत्तिका सत् होनेसे घटका असत्व अनुपपन्न होगा। अर्थात् मृदभिन्नता होनेसे, और मृत्तिकाकी घटाभिन्नता रहनेसे घटकाभी असत्व अयुक्त है।

पूर्वपक्षी—घटाकारसे भेदही है। अर्थात् घटका घटाकारसे मृदभेद नहीं है जिससे उक्त दोष होगा।

सिद्धान्ती—ऐसा कहनेसे यह प्रश्न है कि किसके साथ मृत्तिका का अभेद है? अभिप्राय यह है कि भेदाभेद उक्ति अयुक्त होगी अर्थात् मृत्तिकाका अभेद न रहनेसे भेदाभेदवाद सिद्ध नहीं होगा।

पूर्वपक्षी—घटकाही अभेद है, अर्थात् घटका मृत्तिकारूपसे मृत्तिका-अभेदभी है.

सिद्धान्ती—यह तो मृत्तिकाही है। और वह मृत्तिकाभी

पहिले भी वर्तमान है। अर्थात् यदि घट मृत्तिकाभेदका धर्मी होगा तो मृत्समयमे घटसत्ताकी आवश्यकता होनेसे अनुपलंभादिकी अनुपपत्ति तदवस्थ होगी।

पूर्वपक्षी–भेदांश घट पहिले नही है इस हेतुमे उक्त दोष नही होता; तात्पर्य यह है कि कार्यकारणसे अतिरिक्त भेद या अभेद नही है, किंतु कारणही अभेद है। और कार्य उत्पत्तिके पहिले असत् है। अतएव अनुपलभादिकी अनुपपत्ति नहीं है

सिद्धान्ती–-ऐसा कहनेसे कार्यकारणके अत्यन्त भेदवादि-मतसे भेदाभेदमतमे विशेष कुछ नहीं होगा।

(६) गुणगुणीका कार्यकारणका तादात्म्य होता है और तादात्म्यका लक्षणः—

आशंका–गुणगुणीका कैसे संबंध है ?

उत्तर–तादात्म्यरूप है ?

आशंका–वह कैसा है ?

उत्तर–गुणीका तादात्म्य गुणमे विद्यमान है। गुणमे गुणिभिन्नत्व है अथच गुणीसे अभिन्न गुणका सत्व होता है। इस प्रकारसेही गुणमे गुणीका तादात्म्य होता है। अर्थात् सत्ताका अनवच्छेदक जो भेद, वही तादात्म्य पदवाच्य है। अर्थात् जो–भेद सत्ताका अवच्छेद (पृथकत्व) संपादन नही करता उस भेदको तादात्म्य कहा जाता है, गुणीका यह भेद गुणमे रहता है। जैसे घटादि पदार्थ दडादिसे भिन्न वैसेहि मृत्तिकादिसे भी भिन्नही है, अन्यथा ...क दोष होगा। परंतु मृत्तिका और घटका भेद विद्यमान होने-मभी परस्पर सत्ताका अवच्छेदक नहीं होता। अथात् भेद रहनेसेभी

उक्त भेद मृतिकाकी सत्ता और घटकी सत्ता इन उभय सत्ताको पृथक नही करता। तात्पर्य यह है कि मृतिकासे घट भिन्न होनेसेभी वह घटगत भेद मृत्तिका–सत्ताका भेदक नहीं होता। अतएव उक्त भेद सत् नहीं है। जो–भेद, सत्ताका भेद करता है, वह भेद सत् होता है। जैसे दंड और घटका भेद सत्ताका अवच्छेदक होता है अतएव उक्तभेद सत् है। 'मृद्घट' ऐसी प्रतीति होनेसे, तथा मृत्तिकात्व विना घटसत्ताका अदर्शन होनेसे, मृत्तिकाभेद दंडघट-भेदसे विलक्षण होता है।

पूर्वपक्ष–जैसे दंडघट-भेद दंड और घट इन उभयमे विद्यमान रहता है ऐसा अन्यत्रभी (मृद्घटमेभी) रहेगा। अथच दंडघट-भेद सत् है। सुतरां मृद् और घट इन उभयोंके सत्ताका अवच्छेद होगा।

सिद्धान्त–मृद्घटमे आगमनकारी दंडघट–भेद अन्यत्र सत् होनेसेभी, तथा अन्य सत्ताका अवच्छेदक होनेसेभी, मृत्तिका और घट इस अवच्छेदमे सत्ताका अवच्छेद नही करता अर्थात् मृत्तिका और घटकी दो सत्ता नहीं करता। पूर्वपक्षीके मतमे समवायका वाय्वादिमे वृत्तित्व होनेसेभी अपरस्थलमे (घटपटादिमे) जैसा उस समवायका रूपनिरूपितत्व होता है वैसा वायुमे रूपनिरूपितत्व नहीं होता (वायुमे रूप नहीं है); प्रकृत स्थलमेभी ऐसा जानना होगा। अर्थात् अपर स्थलमे भेदका सत्तावच्छेदकत्व होनेसेभी 'मृद्घट' इसस्थलमे सत्तावच्छेदकत्व नहीं होता। परतु वेदान्तमतमे भेदमे औपाधिक भेदभी है अर्थात् 'मृद्घट' यह भेद और 'दंड घट' यह भेद पृथक पृथक होनेसे मृद्घटभेद असत् होता है अर्थात् उक्त भेद सत्तावच्छेदक नही होगा। अतएव कोई दोष नहीं है अर्थात

भेदमे औपाधिक भेद होनेसे अर्थात् मृद्घट निरूपितत्वरूप उपाधिसे पृथक तथा दंड–घट–निरूपितत्वरूप उपाधिसे पृथक होनेसे दोष नही है। दंडादि अभावसेभी घटसत्ताका 'सन् घटः' ऐसा अनुभव होनेसे, तथा 'दंडघट' ऐसा अनुभवन होनेसे घटसत्ताका अन्यत्व सिद्ध होता है। मृत्तिकाघटस्थलमे ऐसी प्रतीति न होनेसे अन्यत्व सिद्ध नही है। इसीकोही अद्वैतसिद्धान्तमे उपादान उपादेयका काल्पित भेद कहा जाता है.

(७) पराभिमत भेदाभेद वादका और अद्वैतवेदांत संमत भेदाभेदवादका पृथकत्व प्रदर्शनः––

अद्वैतमतमे कार्यकारणका भेदाभेद मानाजा जाता है, परतु कारण व्यतिरेकसे कार्यसत्ता अंगीकारपूर्वक उनको (कार्य-कारणका) अभेद उक्तमतमे नही मानते किंतु कल्पित भेद स्वीकृत करते है। भेदाभेदस्थलमे, पारमार्थिक भेद रहनेसे' भूतलं घटो न' ऐसे प्रतीतिके समान 'मृद्घटो न' ऐसी प्रतीति हो जाती। घट और भूतल इन उभयमे समसत्ताक भेद है, इस हेतुसे घट और भूतलका अभेदानुभवका विरोध होता है। अन्यत्र समसत्ताक भेद अभेदानुभवका विरोधी होनेसे कार्यकारण स्थल-मेभी ऐसा विरोध होगा। (९) समसत्ताक भावाभावका

(९) (क) एवंविध भेदाभेदयोरभ्युपगमेचालौकिकत्वापत्ते सामा नाधिकरण्यप्रत्ययस्यच कल्पित भेदेनापि वाय देवदत्त इत्यादाविव सम्भवात्।

(चित्सुखाचार्यकृत नैष्कर्म्यसिद्धि भावप्रकाशिका अमुद्रित)

(ख) भेदाभेदवादिन प्रमाणभ्रान्तिव्यवस्थापि न सिध्यति सद्र

अविरोध होनेसे विरोधवार्ता उच्छेद प्राप्त होगी। अतएव कार्यकारणके भेद और अभेदको भिन्नसत्ताक मानना होगा। सामानाधिकरण्य अनुभवद्वारा और पूर्वोक्त युक्तिद्वारा भेद-काही न्यूनसत्ताकत्व (कल्पितत्व) सिद्ध होता है। भिन्नसत्ताक होनेसेही भेद और अभेद विरुद्ध नहीं है। अतएव कार्य और उपादानकारणका औपाधिक भेद होता है, सत्ताभेद नहीं होता। सुतरां यदभिन्न कार्य उत्पन्न होता है वही कारण उपादान होता है। अभेदका अर्थ यह है कि पृथकसत्ताशून्यत्व। यदिभेद सत्तावच्छेदक होगा तो भिन्नका अभिन्नसत्ताकत्व विरुद्ध होगा। उपादान और उपदेयका भेद सत्तावच्छेदक नहीं होता। यदि उनका भेद सत्तावच्छेदक होगा तो मृद्घट ऐसा प्रत्यय नहीं होगा। अतएव उपादानद्वारा अवाच्छिन्न जो अधिष्ठान-सत्ता, वही उपादेयद्वाराभी अवाच्छिन्न होती है। अतएव उपादान और उपादेयका भेद होनेसेभी उन दोनोका एकसत्ताकत्व होता है। इस प्रकारसे भेदका सत्ताशून्यत्व होनेसे कार्य और उपा-दानकारणका अनिर्वचनीय भेद होता है। कार्यका अनिर्वचनी-यत्व होनेसे, कारणसत्ता व्यतिरेकसे स्वतः सत्ताभाव होनेसेभी अनिर्वचनीय भेद जनित कार्य-कारणभाव उपपन्न होता है। अतएव कार्य और उसके भेदका सद्विलक्षणत्व (अनिर्वचनीयत्व) होने-सेही कारणतादात्म्य सभव होता है।

व्यादि रूपस्य (?)सर्पादिना विद्यमानस्यैवस्य प्रथमप्रत्ययेन प्रकाशात्वाचरम प्रत्ययेन च तदभावप्रकाशनाच।

(न्यायतत्त्वविवरण=[illegible])

(८) शक्ति खण्डन स्थलमें उल्लिखित सिद्धान्तका प्रयोग।

मायावाद सिद्धान्तः—उल्लिखित सिद्धान्त प्रकृत विचार्य विषयमे कैसे प्रयुज्य है यह अब प्रदर्शित करते हैं। सर्वत्र सच्चित्स्वरूपका अन्वय होनेसे, मृदनुगत घटके समान विश्वके उपादानरूपसे सचित्स्वरूप सिद्ध होता है । सर्व पदार्थ चेतनमें स्थित होकर प्रतिभात होता है। चेतनस्थितिका अर्थ चेतनकी सत्तास्फूर्तिग्राहित्व है। सद्रूप अधिष्ठानका सद्भेद—अभावरूप तादात्म्यही 'सन्घट' ऐसे सामानाधिकरण्य अनुभवका विषय होता है (१०) कार्यप्रपंचमें सचित्स्वरूपका तादात्म्य अनुभूत होनेसे सचित्स्वरूप उसका उपादान है।

उपादान-उपादेय-भावके विचार द्वारा निरूपित हुवा कि, उपादानसे कार्य भिन्न या अभिन्न या भिन्नाभिन्न नही होता किन्तु उपादानसत्ताका भेदक न होकर कार्यपदार्थ उससे भेदयुक होता है। "भिन्नत्वे सति अभिन्नसत्ताकत्वं"। एतादृश स्थलमेंही तादात्म्य संभव होता है । कारण-सत्ताका भेदक न होनेसे वह भेद अनिर्वचनीय होता है। अतएव यदि कार्य और उसका भेद सत्य हो, तो वह भेद सत्तावच्छेदक होनेसे कार्यकी सत्ता कारण-सत्तासे भिन्न होगी। सुतराम् कारणाभिन्न—सत्ताकस्वरूप तादत्म्य अयुक्त होगा। अतएव उस उभयका (कार्य और तद्भेदका)

(१०) घटस्य वस्तुतोऽधिष्ठानसत्तया सम्बन्धाभावेऽपि तत्प्रातियोगिक वास्तवात् सत्तानवच्छेदकभेदवत्स्वरूपतादात्म्यसम्बन्धादधिष्ठानसत्तावच्छेदकत्वेन सद्बुद्धिगोचरता

(अद्वैतदीपिकाविवरण)

अनिर्वचनीयत्व आवश्यक है। इससे यह सिद्धान्त प्राप्त हुआ कि सच्चिन्मात्रही यदि कार्यप्रपंचका उपादान होता है तो उसका कार्य और कार्यका भेद भी सत् होता है। परंतु कार्यकारणका कारणाभिन्न-सत्ताकत्वरूप जो अनुभवसिद्ध तादात्म्य उसके लिये कार्य मे और उसके भेदमे अनिर्वचनीयत्व आवश्यक है। अनिर्वचनीयता की उपपत्ति देनेके लिये अनिर्वचनीय कुछभी कार्य-प्रपञ्चका उपादान मानना होगा। अनिर्वचनीय उपादान माननेसेही कार्य और तद्भेदमे अनिर्वचनीयत्व हो सकेगा। यह 'कुछ' ही अद्वैत वेदान्त शास्त्रमे माया नामसे प्रसिद्ध है। यह माया सर्व कार्यानुगत जाड्यरूप है। वह अनुभवसिद्ध अज्ञानसे पृथक पदार्थ नही है यह अन्यत्र विस्तारसे प्रतिपादित किया जायगा (११) इसस्थलमे शक्तिके खण्डन रूपसे यह प्रतिपन्न हुआ कि चेतन शक्तियुक्त होकर जगद्रूपसे परिणत नही है। वह अनिर्वचनीय-कारण कार्यदृष्टिसे शक्तिरूप अभिहित होनेसेभी किंवा वह चेतनाश्रित अस्वतंत्र इस अर्थसे उसको शक्ति कहनेसेभि चेतनके दिकसे विचार करनेसे उसको चिच्छक्ति कह नही सकते, क्योंकि वह चेतनके स्वरूपभूत या समसत्ताक नही है, वह अनिर्वचनीय जड है। उसका कार्यवर्गभी जड है। जडप्रपंच चेतनके आत्मभूत या अंशभूत या परिणाम-

(११) उक्त अनिर्वचनीय पदार्थके स्वरूप निर्धारणके लिये अनुभवसिद्ध सर्वावस्थाके निश्लेषण द्वारा ऐसा एक अनुगत जडपदार्थ निर्दिष्ट होना आवश्यक है जो किसीकाभी कार्य नही है अथच विचित्र कार्य उत्पादनमे समर्थ तथा जिसके द्वारा चेतनरूप अधिष्ठानमे विकार संपादित नही होता, जिसद्वारा चेतनरूप अधिष्ठानका अखण्डत्व अव्याहत रहते हुए भी वहापर खण्डप्रतिभास सम्भव होता है। इस अनुसंधान का प्रकार 'अद्वैत सिद्धान्त [illegible]

रूप विशेषणभूत नहीं है। अजडका स्वरूप या गुण या धर्म या विकाररूप न होनेसे जडपदार्थ तत्त्वतः चेतनके अन्तर्भूत नहीं है।

फ–कार्य प्रपंचका द्विविध मूलउपादानः—

कार्य प्रपंचका द्विविध उपादान होता है --जड और चेतन। जड-अज्ञान जडप्रपंचका परिणामी उपादान होता है और चेतन उसका सत्ताप्रद उपादान होता है। जो वस्तु जिसकेद्वारा अनुविद्ध होकर उत्पन्न होती है, वह वस्तु तदुपादानक होती है। कार्यवर्ग, चेतनसत्ता-अनुविद्ध और जडानुविद्ध उत्पन्न होता है।अतएव उभयका उपादानत्व स्वीकार्य है। अज्ञान और चेतन इन उभयकामी उपादान.ल-लक्षण (यदभिन्नकार्यमुत्पद्यते तत्कारणमुपादानम्, अभेदश्च पृथक सत्ताशून्यत्वं) रहनेसे उपादानत्व आवश्यक है (१२) अधिष्ठान चेतनसत्ता, कारणरूप- अज्ञानद्वारा, अवच्छिन्न होकर कार्यद्वाराभी अवच्छेद प्राप्त होती है। इस प्रकारसे अज्ञान और तत्कार्यका तादात्म्य (एक सत्ताकत्व) सिद्ध होता है। जड-अज्ञानके आश्रयरूपसे चेतनका उपादानत्व होता है। उपादानत्वका अर्थ परमाणुके समान आरम्भकत्व किंवा प्रकृतिके समान परिणामित्व नहीं है किंतु विवर्त्तत्व है अर्थात स्व-स्वरूप अपरित्यागसे अनिर्वचनीय रूपान्तर भासिहै। अतएव चेतन आविकृत उपादान कारण या

(१२) (क)ब्रह्मणः कार्यत्वस्य प्रपंच अभ्युपगम्यमान जडत्वस्य आरम्भित्वापत्तेः। सत्यानृतात्मक प्रपचस्य सत्यानृतोपादानकत्व नियमात।
(तत्त्वपदार्थविवेक-अमुद्रित)

(ख)कार्यस्य जडत्वात् कारण जडांशो अनुमेय.।
(आरण्यवृत्तिसम्बन्धवार्त्ति=बृहदारण्यक भाष्यवार्तिक टीका अमुद्रित)

विवर्त्तकारण "स्वाभिन्न न्यूनसत्तार्थो विवर्त्तः।"

आविकृत होकर, चेतन परिणामिरूपसे उपादान नहीं है। यदि निरवयवका परिणाम हो तो संपूर्णकाही होगा। सर्वथा परिणाम होनेसे चेतनस्वरूपका अभाव प्रसंग होगा। सुतरां जगतकी अप्रसिद्धि होगी। निरवयवमें एक देशका अभाव होनेसे एकदेशिक परिणाम संभव नहीं है। 'आविद्यकस्तु देशो विवर्त्ततयैव संभवति'। परिणाम कहनेसे प्रश्न उत्पन्न होता है कि स्वस्वरूप स्थित होकरही चेतनका जगदाकारसे परिणाम होता है अथवा उसके विनाशसे? आद्यपक्षमें नामान्तरसे विवर्त्तवादही आश्रित है। लोकमें रज्वादि स्वरूपमें रहकर सर्पादि रूपान्तर आपत्तिका विवर्त्तत्व दृष्ट होता है। दध्यादि आकारसे परिणामी दुग्धादिमें क्षीरस्वरूप अदृष्ट है। द्वितीय पक्षमें जगदुपादान चेतनका असत्त्व होनेसे जगत्की स्थिति अनुपपन्न है। अतएव चेतन परिणामिरूपसे उपादान नहीं है। सावयव पदार्थके अवयवका उपचय-अपचयद्वारा संस्थानान्तर उत्पन्न हो सकता है। कार्य-कारण- संघातका जो अध्यक्ष साक्षी-चेतन वह निरवयव होनेसे उसके स्वभावकी विच्युति संभव नहीं है। अतएव उसके परिणामकी संभावना नहीं की जा सकती चेतनको परिणामिरूप-अन्यथाभाव संभव न होनेसे अथच चेतनसत्तासे जडकी सत्ता और भान होनेसे चेतनके दिकसे जडका विचार करें तो उसको चेतनका अन्यथाभाव कहना होगा। वह अन्यथाभाव तात्त्विक नहीं हो सकता, वह अतात्त्विक होगा। अज्ञानविना अतात्त्विक अन्यथाभावरूप विवर्त्त संभव नहीं है। परिणामवान अज्ञानविना चेतनका विभ्रमाधिष्ठा-

नत्व सिद्ध नही होगा। चेतनरूप अधिष्ठान निरवयव है। जगत् सावयव दृष्ट होता है। निरवयवत्वका अविरोधी सावयवत्व होता है। यह सावयवत्व अज्ञानकृत होगा। अज्ञान-कल्पित होनेसेही सावयवत्व निरवयवत्वका व्याघात नही करता। अज्ञान अनिर्वचनीय होनेसे उसका संबधर्मी अनिर्वाच्य है। अतएव वस्तुका निरवयवत्व निरोध प्राप्त नही होता। अनिर्वचनयि होनेसेही वह 'सावयव' या 'निरवयव' उसका कृत्स्न या आंशिक परिणाम इत्यादि विकल्प दोषसे अज्ञान दूषित नही होता। (१३)

परिणामिकाही सर्वत्र विकारित्व होता है, अधिष्ठानका नही। अतएव अधिष्ठानरूपसे सचित्स्वरूप उपादान है, परिणमिरूपसे अज्ञान उपादान है। अज्ञानका परिणाम होकरभी जगत् सत्य है ऐसा कहना उचित नही है। परिणामी उपादान कारणके समसत्ताक सत्यत्व परिणामका होता है। चेतनके समसत्ताकत्वका अभाव होनेसे चेतन जडका परिणामिकारण नही है। स्वसमानसत्ताक विकारका हेतु न होनेसे चेतनका निर्विकारत्व उपपन्न होता है। (१४)

(१३) तदेवं भेदाभेदादिपक्षेषु कार्यकारणभावस्य दुर्निरूपत्वात्, स्वरूपतोपि विचारागोचरत्वात्, अनाद्यविद्यातद्विलसितः सकलोप्यय प्रपचः। (तत्वप्रदीपिका=चित्सुखी)

(१४) परिणामोऽपि वस्तुनः सर्वात्मना एकदेशेनवा; आद्ये अनवशेषेण पूर्वरूपे निवृत्ते न तस्य परिणामः; द्वितीये स एकदेशस्तस्माद्भिन्नश्चेत् न वस्तुनः परिणामः, न ह्यन्यस्मिन् परिणममाने अन्य. परिणमते, अभेदे सर्वात्मना परिणामापातः; भिन्नाभिन्न एकदेशो वस्तुत इतिचेत्, न, भेदास्याभेद विरोधित्वात, अविरोधे एकदेशस्यैकदादीमात्रत्व स्यात्, भेदास्याभेदे ऽप्यपि अविरोधात् तस्यैव सर्वात्मना परिणामापत्तेः,.........तस्मान्मायामयी सप्रपञ्चता, निष्प्रपञ्चनातु तात्त्विकीति सिद्धम् ॥ (शास्त्रदर्पण)

(घ) सिद्धान्तरीति प्रदर्शन ।

उल्लिखित विचारद्वारा सिद्ध हुआ कि, अद्वैतसिद्धान्त प्रतिपादन उद्देशसे ग्रंथमे जैसी रीति अवलम्बन की वह सर्वथा समीचीन है । ज्ञान और ज्ञेय इस द्विविध पदार्थमे ज्ञान स्वप्रकाश सत्स्वरूप है और ज्ञेयपदार्थ सत्स्वरूप ज्ञानके साथ तादात्म्यप्राप्त उसका अधीन (सत्तास्फूर्तिकेलिये ज्ञानस्वरूपका सापेक्ष) है ऐसा प्रतिपादन करनेके पश्चात् ज्ञेयप्रपंचका मिथ्यात्व (अनिर्वचनीयत्व) प्रदर्शित किया । ज्ञेयका मिथ्यात्व प्रतिपन्न होनेसे वह जिसके सत्तासे सत्तावान है तथा जिसके भानसे भासित है उस स्वप्रकाश अधिष्ठानका सत्यत्व और अधिष्ठान व्यतिरिक्त सत्य पदार्थका परिशेष न रहनेसे, उसका त्रिविधपरिच्छेद–राहित्यरूप अद्वैतत्व सिद्धान्तित हुआ, (१५)

जड और चेतन इस उभयमे यदि शक्ति–शक्तिमद्भाव, गुणगुणि–आदि–भाव या अध्यस्त–अधिष्ठान–भाव न हो तो वे परस्परभिन्न निरपेक्ष पदार्थ होनेसे द्वैतवाद सिद्ध होगा । अद्वैतवाद सिद्ध होनेके लिये एकमे अपरका अन्तर्भाव प्रदर्शित होना आवश्यक है । इनमेसे चेतन यदि जडका अन्तर्भूत उसका परिणामभूत हो और वह जड यदि एक हो तो जडाद्वैतवाद सिद्ध होगा । चेतनाद्वैतवाद प्रतिपादित होनेको लिये चेतनमे (स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूपमे) जडका अन्तर्भाव प्रदर्शन करना होगा। यह अन्तर्भाव त्रिविधरुपसे हो सकताः–जडपदार्थ चेतनका शक्तिरूप या शक्तिव्यतिरेकसे गुणादिकी समान चेतनका आश्रितरूप

(१५) तात्विकद्वैतविधुर मद्वस्तु अद्वैतं । (वेदान्तकौमुदी-अमुद्रित)

या रज्जुमें सर्पादिके समान चेतनमें अध्यस्तरूप । इनमेंसे प्रथम और द्वितीय प्रकारानुसार विशिष्टाद्वैतवाद (वास्तव विशेषण-सहित) सिद्ध होगा, तृतीयरीतिसे केवलाद्वैतवाद (अवास्तव विशेषणयुक्त) प्रतिष्ठित होगा । इस प्रवन्धमें तृतीयरीति यथाकथंचित प्रदर्शित करनेका प्रयास कीया है । चेतनका अनात्मसम्भेदावभास अख्याति नहीं किम्वा अन्यथाख्याति भी नहीं अथवा आत्मख्याति भी नहीं है ; अतएव चैतन्यकाही स्वाविद्याविवर्तमान मिथ्या-वस्तुसम्भेदावभासलक्षण अनिर्वचनीयख्याति अस्वीकृत होनेसे चेतन और अचेतनका अत्यन्तविविक्तावभासही होगा न कि संभेदावभास

उपसंहार

मूलतत्त्वानुसंधानमें प्रवृत्त होकर भारतीय दार्शनिक लोक विविध विचित्र सिद्धांतमें उपनीत हुए हैं। इस प्रकार सिद्धांतभेद होनेका हेतु क्या है? यदि तत्त्व कुछ रहे तो उसका अस्तित्व बुद्धिके सापेक्ष नहीं होगा यह निर्विवाद है, तथापि "यदि कुछ रहे" इस अनिश्चित-अवस्थामें विवेकीका (विचारवान मननशील व्यक्तिका) मन सन्तोषप्राप्त नहीं हो सकता। उनका मन तत्त्वस्वरूपका निश्चय करनेमें प्रयास करता है। यह निश्चय बुद्धिवृत्तिके अधीन है और बुद्धि स्वभावतः परिणामशील है, एक--रस नित्य नहीं है। अतएव संस्कारभेद और शिक्षाभेदसे बुद्धि-भिन्नता होनेसे तन्मूलक विचारभेद अवश्यंभावी है। यद्यपि तर्कका प्रसार साधारण कार्यकारणभावका नियमके अवलंबनपर होता है और इसी हेतुसे परस्परमें विचार संभव होता है तथापि उस नियमका प्रयोग भिन्न भिन्न होनेसे सिद्धांतका भेद हो जाता है। तत्त्वका निर्णय बुद्धिके अधीन होनेसे और यथार्थ निश्चयके लिये मानवको बुद्धि व्यतिरिक्त अपर कोई साधन न रहनेसे तथा जहांपर बुद्धिवृत्ति शान्त है वहांपर निर्धारणका सामर्थ्य न रहनेसे और उस अवस्थासे व्युत्थित होकर स्व स्व संस्कारभेदसे शिक्षाभेदसे उक्त अवस्थाकी उपपत्ति विभिन्नरूपसे कल्पित होनेसे बुद्धि-भिन्नताके कारण (या दृष्टिभेदसे या रुचिभेदसे) सिद्धांतभेद होना स्वाभाविक है।

अब तत्त्वविषयक भारतीय विभिन्न सिद्धांत वर्णित होता है। (१) जगत् नित्य है, 'न कदाचिद् अनीदृशं

जगत्' (सृष्टिप्रलय विहीन) यह कोई कोई मीमांसक मानते है। (२) कारण विनाही कार्य होता है, यह स्वभाववादी चार्वाकका मत है। (३) शून्यही पूर्व पूर्व अलीक वासनावशसे विचित्र प्रपंचाकारसे प्राथित होता है यह शून्यवादी बौद्धोंका अभिमत है। शून्यवादिमतमे अभावही कारण है, स्वभाववादमे अभाव या भाव कारण नही है। (४) वसन्तादि कालमेही नियमपूर्वक कार्यविशेष दृष्ट होनेसे कालही कारण है यह ज्योतिर्विदोंका मत है। (५) क्षणिक विज्ञानमे जगत् कल्पित है यह विज्ञानमात्र-तत्त्ववादी बौद्धोंका (योगाचार संप्रदायका) अभिप्राय है। (६) **परमाणुवादः**—इस वादमे तिन भेद हैः—(क) पौद्गलिक कार्य (जैनसम्मत) (ख) संघातवाद (सौत्रान्तिक बौद्धाभिमत-परमाणुपुञ्जसे भिन्न अवयवी नही है) (ग) परमाणुआरंभवाद (न्यायवैशेषिकसम्मत-अवयवअवयवीके भिन्नतावाद)। सूक्ष्म तन्त्वादिसे स्थूल पटादिकी उत्पत्ति दृष्ट होनेसे सूक्ष्म स्थूलका कारण है। इसप्रकार तन्त्वादिकाभी तदवयव सूक्ष्म कारण है। इसप्रकारसे जिसमे अन्य सूक्ष्म संभव नही है वह निरवयव परमाणुही जगतका मूलकारण है।

(७) **परिणामवाद**—इसवादमे तिन भेद है।—(१) प्रकृतिपरिणाम। (२) शब्दपरिणाम। (३) चेतनपरिणाम। (१) त्रिगुणात्मक (प्रकाशशील सत्त्व, क्रियाशील रज, स्थितिशील तम) जगतरूप कार्यके सदृश त्रिगुणात्मक प्रकृतिही कारण है यह सांख्यादिको अभिमत है। (२) पूर्वपरादिविभागरहित अनुत्पन्न अविनाशी शब्दमय ब्रह्मका परिणाम यह जगत यह वैयाकरणलोगोंका मत है (३) तृतीयमतमे अवान्तर भेद है

यथाः—विशिष्टाद्वैतवाद (रामानुजीय और शैव), शक्तिवि-शिष्टाद्वैतवाद (शाक्त संप्रदाय), द्वैताद्वैतवाद (भास्कर और निम्बार्क) अचिंत्य भेदाभेदवाद (गौडीय वैष्णव), शुद्धाद्वैतवाद (वल्लभीय)।

विवर्त्तवाद (केवलाद्वैतवाद)—एकही अद्वितीय असंसृष्ट सकलोपाधिपरिशुद्ध ब्रह्म अनादि अविद्यावशसे सद्वितीयके समान अवभासमान होता है; वह परमार्थतःनिधर्मक है; सधर्मक प्रतिभास-जीवत्व जगत्व ईश्वरत्व-मिथ्या है (<u>प्रथम क्रोडपत्र द्रष्टव्य</u>) यह अद्वैतवेदान्तिक सिद्धान्त है।

यह सिद्धांत, वैदान्तिक दार्शनिक पद्धतिसे इस प्रबन्धमे यत्किंचित् प्रदर्शित किया गया। विचारद्वारा निर्णीत हुआ कि चिन्मात्रस्वरूप साक्षीके साथ तादात्म्यप्राप्त होकर अशेष साक्ष्यकी प्रतीति होती है। ऐसा सिद्ध होनेसे प्रकृति परमाणु आदि जड–कारणवाद निरस्त हुआ। "न च स्वभावतः विशिष्ट देशकालनिमित्तोपादानादिति । स्वभावो नामान्यानपेक्ष तेनापेक्षैवानुपपन्ना कुतो नियमसंभवः "। ज्ञानका नित्यत्व सिद्ध होनेसे क्षणिक विज्ञानवाद और शून्यवाद खण्डित हुआ। अभाव और शब्दका अनुगम जगतमे गृहीत न होनेसे वे जगतके मूल उपादान नहीं है। अधिष्ठान सद्रूप अद्वितीय आत्मचैतन्यही सद्बुद्धिगोचर होता है, वही वास्तव स्वरूप है, तद्व्यतिरेकसे दृश्यका स्वतः सत्ताभाव होनेसे वही सर्वाभेद है, सुतरां वैष्णवादि सम्मत भेदाभेदवादभी तिरस्कृत हुआ। इस सर्वानुस्यूत एक सचित्स्वरूप ज्ञेयके दिकसे विचारित होनेसे वह मूलतत्त्वरूपसे अभिहित होता है। अतएव ज्ञानस्वरूप सत्यस्वरूप अनन्तस्वरूपही परिदृश्यमान विश्वप्रपंचका मूलतत्त्व है। इति ॥

क्रोडपत्र [प्रथम] ।

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति यह अवस्थात्रय सर्वानुभवसिद्ध है । भिन्न भिन्न अवस्थाका अनुभव तभी संभव है जब इन सबमे व्याप्त एक साक्षिरूप प्रकाश रहेगा । चैतन्यकी अनुगति न रहनेसे अवस्था-सिद्धिही नही होगी । इन अवस्थाके भावाभावसाधक व्यतिरेकसे अवस्थावचादी प्रसिद्ध नही होगी । स्वरूपका अभाव स्वविकारा-भाव स्वद्वारा दृष्ट होना शक्य नहीं है । स्वयं नष्ट होकर कैसे नाशको अवगत होगा ? अथच भाव और अभाव एकद्वारा वेद्य होता है यह नियम है । अतएव उनके भावाभावकी सिद्धि तद्व्यतिरिक्त साक्षीद्वारा होती है यह मानना होगा । उस सिद्धिप्रद साक्षी व्यति-रिक्त अपर स्वीकार करनेसे उसकाभी साधकान्तर दूसरा इस रीतिसे अनवस्था होगी । अनवस्था वस्तुसत्ता की विघ्नकारक होती है । ऐसा साधकन्तर अनुभूतभी नहीं है । उस सिद्धिप्रदका अभाव सिद्ध नही हो सकता । सर्व भावाभाव-विभाग बोद्धृ-अधीन सिद्ध होनेसे साधक बोद्धाका अभाव अन्यतः सिद्ध नही हो सकता । स्वद्वाराभी वह सिद्ध नही हो सकता, क्योंकि स्वअभावके साधकरूपसे अपनी अवस्थिति आवश्यक है । व्यभिचारि अवस्थाका भावाभाव-साधक अव्यभिचारी होगा । सर्वका व्यभिचारित्व होनेसे व्यभिचा-रभी सिद्ध नही होगा । एकका अव्यभिचारित्व होनेसे सर्वव्यभि-चारिता नही होगी । उस अव्यभिचारिकी स्वतः सिद्धि आवश्यक है । विकारोंके उत्पत्ति स्थिति और नाशमे जो अवगत होकरही वर्तमान रहता है उस अविनश्वर साक्षिप्रकाशके सिद्धिमे अपरकी अपेक्षा न रहनेसे वह स्वतःसिद्ध है । सदा असंदिग्ध अविपर्यस्त साक्षिकी नित्य-साक्षात्-कारता तभी संभव है यदि वह अनाग-न्तुक प्रकाश होगा । यह स्वप्रकाश ज्ञानही ज्ञेयदृष्टिसे प्रकाशक

या प्रकाशके ग्राहकरूपसे प्रतिभात है, कभीभी ग्राह्य नहीं होता। वह प्रत्यगात्माही सर्वागमाधायके अवधिरूपसे सर्वद्रष्टा सर्वसाक्षी होनेसे सर्वप्रकार प्रपच विलक्षण है। इसप्रकारसे जीवानुभूत अवस्थाके विचारद्वारा जीवत्वरहित अवस्थारहित साक्षिप्रकाश सिद्ध होता है। यह प्रकाश भेदरहित है। भेद वेद्य होनेसे साक्षीका धर्म नहीं है। साक्ष्यधर्म साक्षिगत नहीं हो सकता, अन्यथा उसका साक्ष्यत्वहीका लोप हो जायगा पक्षान्तरमें प्रकाशकाभी वेद्यत्व प्रसग होगा। अतएव वह प्रकाश अखड है। वह निर्विकार है। विक्रियासमूह अनुभाव्य होनेसे वह रूपादिके समान अनुभूतिका (साक्षिप्रकाशका) धर्म नहीं होगा। अनुभूयमान न होकरभी विकारसमूह स्वयभात है ऐसा कहना उचित नहीं है। ऐसा होनेसे वह स्वयप्रकाश चेतनसे भिन्न नहीं होगा, उसका विकारत्वही असिद्ध होगा। अननुभूयमान कैसे स्वयप्रभ होगा? " अन्तर्भावे तुवाह्याना चित्स्वभावो निरजन। बहिर्भावेतु बाह्यत्वात् चित्स्वभावो निरजन "॥ अतएव वह अखड प्रकाश विकाररहित है। जो अविकारि वह अशेष विशेष विहीन (निर्विशेष) होता है। जो कोई विशेपके साथ कदाचित् युक्त होता है वह विकृत होता है। जो एक अविक्रिय प्रकाशस्वभाव है उसके तद्विपरीत आकाररूपसे अवभास स्वाभाविक नहीं है।

जगत्त्व—वह प्रकाशही ज्ञेयप्रपचके साथ सबधयुक्त होकर जगतरूपसे अभिहित होता है। सबध द्विविध है, साक्षात् (मूल) और परपरा। साक्षात् सबध द्विविध, सयोग और तादात्म्य। विषयविषयिभाव और विशेष्यविशेषणादिसबध उक्त द्विविध सबध मूलक होता है, अन्यथा अतिप्रसग दोष होगा। जडचेतनका

संबंध संयोगरूप नहीं है क्योंकि साक्षिप्रकाश निरवयव है। उस निष्प्रदेश चेतनमें 'स्वाभावसमानदेश' संयोग (जहांपर संयोग रहता है उस आश्रयमेंही अवच्छेदक-भेदसे संयोगका अभाव रहता है) हो नहीं सकता। ज्ञेयप्रपंच उस प्रकाशसे अप्राप्त या स्वतंत्र नहीं है। स्वतंत्र और अप्राप्त द्रव्यद्वयका संबंध होनेसे वह संयोग पदवाच्य होता है। ज्ञानस्वरूपसे ज्ञेय पदार्थ स्वतंत्र और अप्राप्त न होनेसे उभयका संबंध संयोग नहीं है अवशेष ज्ञान और ज्ञेयका तादात्म्य मानना होगा। तादात्म्य होनेसेही ज्ञेयपदार्थ ज्ञानका सापेक्ष है, ज्ञान-व्यतिरेकसे ज्ञेयकी उपलब्धि नहीं होती। चैतन्यके विषयतादात्म्यविना अपरोक्षरूपसे उसका अवभास अयुक्त है। जडप्रपंच वेद्य होनेसे अपरके विशेषण रूपसे उसकी सिद्धि होती है, स्वतंत्ररूपसे नहीं। वह अपर, ज्ञानस्वरूप है। अथच ज्ञानस्वरूपका अजडत्व और ज्ञेयप्रपंचके जडत्वसे विलक्षण होनेके कारण इन उभयका तादात्म्य संभव नहीं है। औरभी चेतन परिणामरहित होनेसे जडके साथ उसका यथार्थ तादात्म्य संभव नहीं है। अतएव जडचेतनका आध्यासिक तादात्म्य मानना होगा। ऐसा संबंध भ्रान्तिस्थलमें प्रसिद्ध है। संबंधविना प्रकाश्य-प्रकाशक भाव अयुक्त होनेसे तथा यथार्थ संबंध उपपन्न न होनेसे, आध्यासिक संबंध मानना होगा। आध्यासिक तादात्म्य रूप संबंधके स्वीकारविना जड चेतनके सामानाधिकरण्यमें अभेद प्रतीतिकी उपपत्ति नहीं दी जा सकती, जड और चेतनका वास्तव अभेद असिद्ध है। आध्यासिक तादात्म्यस्थलमें अन्यतर मिथ्या होता है। अधिष्ठान स्वरूपतः सत्य होता है किंतु संबंधिरूपसे मिथ्या होता है। अतएव जडरहित स्वप्रकाश अखंडतत्त्वका,

ज्ञेयसहित जगद्भाव सत्य नहीं है।

जीवत्व—जाग्रतस्वप्न सुषुप्तिके विचारद्वारा द्विविध पदार्थ सिद्ध होता है, विषय और विषयी। विषयका त्रिविध भेद अनुभूत होता है। जाग्रदवस्थामें स्थूलशरीर सूक्ष्मशरीर (अनित्य ज्ञान और सकल्पादिका आश्रय, आश्रयविना संस्कार और स्मृति आदिकी उपपत्ति नहीं होती) और अज्ञान अनुभूत होता है। स्वप्नावस्थामें स्थूलशरीर अनुभवगम्य न होनेसेभी संकल्पादिकी और अज्ञानकी प्रतीति रहती है (संकल्पादि कादाचित्क होनेमें कार्य है, कार्य होनेसे उस जडका कारण अनुगत जड होगा, वही अज्ञान है)। सुषुप्तिमें स्थूल सूक्ष्म की प्रतीति नही है अथच अज्ञान अनुभूत होता है। ऐसे अनुभव बिना व्युत्थित पुरुषको "न किंचिदवेदिषं" ऐसी स्मृति न होती। यह ज्ञानाभावका अनुमान नहीं है यह अन्यत्र प्रतिपादित होगा। इस प्रकारसे विषयका उक्त त्रिविध भेद अनुभूत होता है। समाधि अभ्यासका अनुभवभी उक्त सिद्धातके प्रतिकूल नही है। एकाग्रता-अभ्यासकालमें प्रथमतः स्थूल-विषयक विक्षेप पश्चात् उस विक्षेपकी शिथिलता और सूक्ष्म सकल्पादिकी आवृत्ति तदनंतर उसका अभिभव पश्चात् शून्यभावप्राप्ति उसके अनन्तर इस आवरणभावका तिरस्कार होता है। जीवका ऐसा कोई अवस्था नहीं होता जहापर चतुर्थ उपाधिकी प्रतीति हो। अतएव सिद्ध होता कि अखण्ड स्वप्रकाश साक्षिप्रकाशके साथ त्रिविध ज्ञेयके (स्थूल सूक्ष्म और अज्ञान) संबंध जनित जीवभाव अनुभूत होता है। ज्ञान और ज्ञेयका संबंध आध्यासिक होनेसे चेतनका जीवभाव मिथ्या है।

ईश्वरत्व—अखिलप्रपंच एकही चेतनस्वरूपके साथ तादात्म्य प्राप्त होकर प्रतिभात होनेसे कार्यजगतका निमित्तकारणरूप ईश्वर सिद्ध नही होता। (कार्यसे सर्वथा भिन्न निमित्तकारण होता है)। विरुद्धस्वभाव जड (ज्ञेयप्रपंच) और चेतनका वास्तव तादात्म्य संभव न होनेसे जगतका तात्त्विक उपादान-रूपसे ईश्वर सिद्ध नही होता। चेतनका शक्तियुक्तता और परि-णाम निषिद्ध होनेसे जगतका वास्तव अभिन्न-निमित्तोपादानरूप चेतन (ईश्वर) सिद्ध नही होता। अतशेष ईश्वरभावका अपार-मार्थिकत्व प्रतिपन्न होता है। ऐसा पदार्थ परमार्थत. परमार्थतत्त्वका स्वरूपभूत नही होता किन्तु परमार्थचेतनाधिष्ठित अज्ञानमूलक होता है। निरंश निष्क्रियतत्त्वमे कुछ प्रतीत होना हो तो औपा-धिक और आध्यासिक होना उचित है। ऐसा होनेको लिये अज्ञान (आवरणविक्षेपात्मक) आवश्यक है। इसप्रकार ईश्वर-भाव मान लेनेसे उसका अस्तित्व अज्ञानस्थिति-अधीन सिद्ध होता, इस हेतुसे ईश्वरत्वका मिथ्यात्व होता है। "मानना" कहनेका तात्पर्य यह है कि, अद्वैत वेदान्तिक विचारानुसार साक्षिरूप नित्य स्वप्रकाशज्ञान सिद्ध होनेसेभी उसका ईश्वरत्व निश्चय करना कठिन है। अज्ञान, निष्क्रिय साक्षिप्रकाशका विषय तथा मनोवृत्तिका अविषय होनेसे उसका (अज्ञानका) संख्या सदाही अनिर्द्धारित रहता है। अतएव अज्ञानका एकत्वान्तर्गत बहुत्व निर्णय करनेकी उपाय न रहनेसे तन्मूलक जीवेश्वरभावका स्वरूप निश्चयीकृत नही होता। (इसी हेतुसेही जीवेश्वरविषयक बहुविध कल्पना वेदान्तशास्त्रमे उपलब्ध होता है, इस विषयक मतभेद सिद्धांतलेश ग्रंथमे द्रष्टव्य)।

जब अखण्डचेतन जीवदृष्टिसे (व्यष्टिअभिमानीके दृष्टिसे) समष्टिरूप (सोपाधिक) कल्पित होता है तब वह ईश्वररूपसे विवेचित होता है। " कल्पित " कहनेका तात्पर्य यह है कि, जैसा जीवाभिमान अनुभवसिद्ध है वैसा ईश्वर अनुभवसिद्ध नहीं है। अर्थात् समष्टिअभिमानी कोई है यह जीवके अनुभवका विषय नहीं है। चेतनका व्यापकत्व विचारसिद्ध होनेसेभी समष्टिअभिमानीका अस्तित्व निर्णय करणेका उपाय नहीं है। तोभी अखंड निर्विशेष चेतनका ईश्वरभाव ज्ञेयसंबंधमूलक होगा। संबंध आध्या- [illegible] भी संबंधिस्वरूपसे सत्य नहीं है।

क्रोडपत्र [द्वितीय]

ऐसी जिज्ञासा होगी कि तत्त्वविज्ञानशास्त्र (दर्शनशास्त्र) अध्ययनसे क्या फल होता है ? अतएव फल संबंधमे कहते है। इस विद्याके अनुशीलनद्वारा तत्त्वविषयक नानाविध मतवादका परिचय होता है, बुद्धि तीक्ष्ण होती है, विचार करनेकी कुशलता प्राप्त होती है। दार्शनिक विचारद्वारा कट्टरता (dogmatism) धर्मध्वजिता धर्मान्धता तिरस्कृत होती है; अन्ततः यह सब बुद्धिदोषको तिरस्कार करनेकी योग्यता उक्त विचारका यथेष्ट है। विचारप्रसूत प्रज्ञाद्वारा श्रद्धान्धता और अविचार-मूलक भीतिका लाघव होताहै, लौकिक और धार्मिक नानाविध अन्धसंस्कार-*आलिंगनमूलक विविध विचित्र अभावबोधसे* (feeling of want) अव्याहति होती है। विचारद्वारा तत्त्वनिर्णय होता है और विभिन्न मतोंका समन्वय बोधभी होता है। समन्वयबोध विनाभी तत्त्वविषयक निश्चय देखा जाता है। तत्त्वनिश्चय नही होता ऐसेभी बहुत स्थल दृष्ट है। *आग्रह परित्यागपूर्वक विभिन्न संप्रदा*यके प्रसर ग्रंथके सुगभीर विचारके अनन्तर तत्त्वविषयक निश्चय शिथिल होता है; किंवा तत्त्वविषयमे अनिश्चय या संशय होता है, ऐसा दृष्टात विरल नही है।

जो लोक साधनाभ्यासी है उनके लिये दार्शनिक विचार अधिक फलप्रसू है। मानवमन स्वभावतः मानसिक मलीनता, चंचलता और दुर्बलताके कारण नानाविध दुःखभोग करता है। यद्यपि दुःखका मूलकारण निर्देश करना कठिन है और इस विषयमे धार्मिक और दार्शनिक संप्रदायमे महान् मतविरोध है तथापि अस्मदादिके अनुभवानुसार उपरोक्त कारण निर्णय असंगत नही है।

इंद्रियद्वारा विषयभोग, वह विषय अपगत होनेसे उसके गुणानुसंधानद्वारा पुनः पुनः भावना, तज्जनित तद्विषयक चित्तमें दृढवासना और उसकी स्मृति. ये सब मानसिक अशान्तिके उत्पादक है। यद्यपि दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति संभव नहीं है तथापि विरोधि अभ्यासद्वारा उक्त त्रयकी शिथिलता संपादित होनेसे दुःखकी उपशम हो सकती है। मलीनताके विरोधी हैं शुद्धभावना, चंचलताका तिरस्कारक एकतत्त्वाभ्यास और दुर्बलताका विरोधी दृढ संकल्पाभ्यास है। कोई विषयमें आदरपूर्वक पुनः पुनः चिन्तन करते हुए स्वार्थबुद्धिके दृढतासे तद्विषयक आसक्ति वर्धित होती है। समानविषयक संस्कारका अनेकत्व होनेसे संस्कार दृढ होता है। अतएव विरोधी भावनाभ्यास (प्रतिपक्षभावना) विषयगत आसक्तिके तिरस्कारका उपाय है। मनोगत सूक्ष्म दोषोंके आविष्कृति और उसकी तिरस्कृति ध्यानाभ्यास द्वारा साधित होती है। ध्यान व्यतिरिक्त अपर साधनमें प्रवृत्त होनेसे सुप्त या उद्बुद्ध संस्कारके अनुसंधान और परिचय तथा उनके अभिभवका प्रयास नहीं हो सकता। ध्यानका फलरूपसे चित्तवृत्तिकी द्विविध अवस्था होती हैः---एक एकाग्रावस्था (चित्तवृत्ति किंचित्-ज्ञेययान), अपर निरोधावस्था (चित्तवृत्ति अज्ञेयमान)। प्रथमावस्थामें चित्तकी वृत्ति एकाग्र होकर ध्येयार्थमात्रग्राहि होती है। वह विषयान्तर वासनाभिभवद्वारा ध्येयसाक्षात्कारका हेतु होती है। अतएव तदवस्थामें भिन्न भिन्न पुरुषोंको अभ्यस्त भावनाके अनुसार, कभी कभी संस्कारोंके उद्बोध होनेसे विभिन्न अनुभव होते हैं। एकही पुरुषकी भावना या संस्कारका उद्बोधके अनुसार भिन्न भिन्न कालमें भिन्न भिन्न अनुभव होता है। अपर अवस्थामें अर्थात् निरोधावस्थामें

चित्त संस्कारमात्ररूपसे प्रशान्तवाहि होती है । इस निरोधयोगमे कुछ ज्ञात नही होता ।

ध्यान और विचार यह दोनो अभ्यस्त होना आवश्यक है । विचारबिना मननशील व्यक्तिका तत्त्वविषयक जिज्ञासा उपशमप्राप्त नही होता । ध्यान व्यतिरिक्त अपर साधनसे चञ्चलतादि नानाविध दोषोकी तिरस्कार नही होता । विचार जनित जो निर्भीकता और उदारता वह केवल ध्यानशील व्यक्तिके प्राप्ति होना कठिन है । केवल विचार-अभ्यासीको सहजतः चित्तस्थिरता-लाभ दुष्कर है । विचारसहकारसे ध्यानाभ्यास (यथा चित्ततरंगसहित आपनेको महाशून्यमे मग्न या प्रविलय करनेका प्रयास) द्वारा उक्त त्रिविध दोषकी अभिभव होनेसे मनकी स्वस्थता संपन्न होती है । संस्कारभेदसे और अभ्यास-तारतम्यसे फलभेद होता है ।

स्वाभाविक अनुभवानुसारसे जीवितकालीन फलसंबंधमे सामान्यतः ऐसे कुछ कह सकते है, नियतफलकी प्रतिज्ञा नही कर सकते ।

भारतीय बहु दर्शनशास्त्रमे तत्त्वविषयक विचारके या साधनके फलरूपसे जीवितकालीन या मरणानन्तर दुःखनिवृत्ति रूप नियत–फल प्रतिज्ञात है । परंतु ऐसी प्रतिज्ञा प्रदान करना समीचीन नही है । वह अनुभवविरुद्ध और युक्तिविगर्हित है । जीवानुभूत अवस्थाओंमे सुषुप्ति और मूर्च्छामे दुःखोपलब्धि नही रहती । निर्विकल्प समाधिमेभी ऐसा होता है । सविकल्प समाधि और ध्यानावस्थामे तन्मयता होनेसे, दुःखप्रद चंचलतासे अव्याहति पायी

जाती है । ऐसे अवस्था-प्राप्तिकी चिरंतनता संभावित करना कठिन होनेसे आत्यन्तिक दुःखनिवृत्ति कल्पना नही कर सकते । अपर अवस्थामे रागद्वेष-मूलक व्यवहार होतेही रहता है । बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति या निवृत्ति रागद्वेषमूलक है । रागद्वेष-अभाव-जनित व्यवहार संभव नही है । अभाव (रागद्वेषाभाव) व्यवहारका प्रवर्तक नही है । अभाव स्वतः निर्विशेष होनेसे वह भिन्न भिन्न विशेष व्यवहारका प्रयोजक नहीं हो सकता । धर्मिरूप मन रहते हुए धर्मरूप रागद्वेषादिका अत्यंत उच्छेद संभव नही है। सर्व व्यवहार अभिमान मूलक है । स्थूल सूक्ष्म शरीरमे अभिमान विना जाग्रत-अवस्थाकी प्रसिद्धि नही हो सकती । नानाविध सूक्ष्म तरंगके साथ तादात्म्याभिमान विना स्वप्नदर्शन संभव नही है । जहांपर अभिमानाभाव है वहांपर (सुषुप्त्यादि अवस्थामे) व्यवहारकाभी अभाव होता है । अतएव संपूर्ण व्यवहार अहं-मम-अभिमानमूलक रागद्वेषकृत होनेसे मानसिक तरङ्गका तारतम्य अवश्य होगा । मन स्वभावतः विकारी होनेसे तथा बुद्धिपूर्वक अशेष व्यवहार प्रतिकूल-अनुकूल-बोधजनित होनेसे मनकी एकरसता रह नही सकती ।

उल्लिखित विचारद्वारा प्रतिपन्न हुआकि जीवित-अवस्थामे दुःख-निवृत्ति संभावना करना कठिन है । मृत्युके पश्चात् दुःख-निवृत्ति या सुखप्राप्ति होता है ऐसा अनुमान करनेके लिये कोई योग्य हेतु या व्याप्ति नही है । यह विषय अन्यत्र प्रतिपादन करेंगे । शब्दप्रमाणद्वाराभी ऐसी निर्णय संभव नही है । शास्त्रकारलोग और तथाकथित (so-called) योगसिद्धलोग (एकसंप्रदायगत

तथा विभिन्नसंप्रदायका] इस विषयमें अतिशय विप्रतिपन्न है। अतएव संभावना कीया जाता कि, परस्परविरुद्ध मतोंमें कोइ एकमात्र सत्य होगा किंवा सर्व मिथ्या होगा अथवा मोक्ष या स्वर्ग ये सब अवस्तु है, तद्प्राप्ति-विषयक धारणा परंपराप्राप्त श्रद्धाजडता या मनोरथमात्र है। जोभी, मृत्युके पश्चात् क्या होता है ? जीव रहता है या नहीं ? यदि रहेगा तो किस हेतुसे उसकी कैसी गति होगी ? इत्यादि विषय ग्रंथकर्ता को विदित नहीं; सुतराम् उसका परिचय या प्रतिज्ञा प्रदान करना ग्रंथकर्ताका आयत्त नहीं है। इति ॥

शुद्धिपत्र

पृष्ठ—	पांक्ति—	अशुद्ध	शुद्ध
२	१	तत्व	तत्त्व
,,	१७	तात्पर्य	तात्पर्य
५	१०	उध्दृत	उद्धृत
७	१५	differences	differences,
९	१३	सद्रुप	सद्रूप
,,	१९	उत्पत्ति	उत्पत्ति
२१	१९	वृत्त्यवच्छिन्न	वृत्त्यवच्छिन्नं
२२	३	व्यवहाका	व्यवहारका
,,	१९	अनुमानगोचस्य	अनुमानगोचरस्य
२५	१२	तवेदमिष्टं	तवेदमिष्टं
,,	१३	पृष्टस्य	पृष्टस्य
२७	२०	विधायोग्यत्व	बाधायोग्यत्व
,,	,,	व्यावृत्तित्वा	व्यावृत्तित्व,
३१	२	सयोग।	संयोग-
३७	१८	सतूसदिति	सत्सदिति
३८	१४	ब्रह्माणि	ब्रह्माणि
३९	१७	सत्चेतनका	सत् चेतनका
४१	२	निरोक्षण	निरीक्षण
४५	६	यद	यह
,,	९	प्रष्टव्य	प्रष्टव्य
४८	२०	स्मृत्वा	स्मृत्या
,,	२१	अनपक्षनात्	अनपेक्षणात्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५९	१९	निर्वचनही	निर्वचनीय
६१	२	तादात्म्यावर्गाहि	तादात्म्यावगा
६३	२१	धिका	धका
६४	१४	प्रत्यय—	प्रत्यय
६८	२०	लोष्ट्रादिमे	लोष्टादिमे
७१	२१	रजतावि	रजताधि
८६	२३	मिथ्यऽ	मिथ्याऽ
८८	१	समसताक	समसत्ताक
,,	५	अवभासही	अवभास
,,	१५	सता	सत्ता
९२	२२	सक्षेपशाररिक	सक्षेपशारीरक
९४	९	शद्वप्रयोग	शब्दप्रयोग
१००	८	उभयसिद्धि	उभयासिद्धि
१२७	१६	वृतित्व	वृत्तित्व
१२८	४	अनुभवन	अनुभव न
१२९	२२	प्रत्य	प्रत्ययेन
१३६	६	आत्स्या	आत्मख्या
,,	९	समेदावमास	समेदावमास।
१३९	४	विवर्तवाद	(८)विवर्त्तवाद
,,	५	न्राटि	मृट